पातंजल योगसूत्र

(बुद्धवाणी के परिप्रेक्ष्य में)

विपश्यना विशोधन विन्यास

पातंजल योगसूत्र

(बुद्धवाणी के परिप्रेक्ष्य में)

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरी, इगतपुरी

प्रथम संस्करण : २००३
द्वितीय संस्करण : २००४
तृतीय संस्करण : २००६
पुनर्मुद्रण : २०१०, २०१३

मूल्यः रु. ६०/-

ISBN 978-81-7414-227-4

प्रकाशक:
विपश्यना विशोधन विन्यास,
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२ ४०३
जिला- नाशिक, महाराष्ट्र
फोन: ०२५५३-२४४०७६, २४४०८६
फैक्स: ९१-२५५३-२४४१७६
Email: vri_admin@dhamma.net.in
info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org

मुद्रकः
अपोलो प्रिंटिंग प्रेस
जी-२५९, सीकॉफ लिमिटेड, ६९ एम. आय. डी. सी.,
सातपुर, नाशिक-४२२००७, महाराष्ट्र

पातंजल योगसूत्र
(बुद्धवाणी के परिप्रेक्ष्य में)

विषयसूची

दो शब्द

यह पुस्तक प्रारंभ में आंग्ल भाषा में छपी थी जिसका शीर्षक था - A RE-APPRAISAL OF PATANJALI'S YOGA-SUTRAS (in the light of the Buddha's teaching)। उसका प्रकाशन इसी संस्था द्वारा सन १९९५ में किया गया था। हिंदीभाषियों के अनुरोध पर अब उसी का स्वतंत्र अनुवाद हिंदी में छापा जा रहा है। अनुवाद करते समय कल्याणमित्र श्री सत्यनारायण गोयन्का जी, विपश्यनाचार्य के सुझावों के अनुसार मूल पुस्तक में कहीं-कहीं संशोधन एवं परिवर्द्धन भी किया गया है। अनुवाद कार्य में श्री सुदर्शन प्रसाद जैन, भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, आंग्ल भाषा विभाग, माणिक्य लाल वर्मा राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राजस्थान) ने बहुत सहयोग दिया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं।

विपश्यना विशोधन विन्यास

प्राक्कथन

भारतवर्ष में पतंजलि नाम के बहुत से गणमान्य व्यक्ति हुए हैं। इनमें अधिक विख्यात हैं 'योगसूत्र' के रचयिता, 'व्याकरण महाभाष्य' के रचयिता, 'निदानसूत्र' ('छंदोविचिति') के रचयिता, 'परमार्थसार' के रचयिता, एक सांख्याचार्य, एक आयुर्वेद प्रवक्ता, एक कोषकार, एक लोहशास्त्रकार, इत्यादि। इस पुस्तक का संबंध 'योगसूत्र' के रचयिता से है।

इस ग्रंथ के प्रणेता के जीवनकाल के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पर इनमें से लगभग सभी यह तो मानते ही हैं कि उनका जीवनकाल तीसरी शताब्दी ईसापूर्व से लेकर तीसरी शताब्दी ईसापश्चात के बीच ही कहीं रहा होगा। अपने अपने मत की पुष्टि में विद्वानों ने अलग-अलग प्रमाण प्रस्तुत किये हैं।

इन्हीं में से एक स्वस्थ भारतीय परंपरा[1] के अनुसार 'योगसूत्र' और 'महाभाष्य'[2] के रचयिता पतंजलि नाम के एक ही व्यक्ति रहे हैं। 'महाभाष्य' का प्रणयन दूसरी शताब्दी ईसापूर्व शुंग राजवंश के शासक पुष्यमित्र के राजपुरोहित ने किया था। यह राजपुरोहित पतंजलि नाम के थे। इस प्रकार 'योगसूत्र' का प्रणयनकाल भी दूसरी शताब्दी ईसापूर्व होना विदित होता है।

भगवान गौतम बुद्ध का जीवनकाल छठी शताब्दी ईसा पूर्व होना एक ऐतिहासिक तथ्य है। इस परिप्रेक्ष्य में वे पतंजलि के पूर्ववर्ती थे। उनकी शिक्षा का मानव समाज पर अत्यंत गहरा प्रभाव पड़ा था जिसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में लोग उनके द्वारा विहित मार्ग का अनुसरण करने लगे थे। उनकी शिक्षा के मूल स्तंभ थे - नैतिकता के कुछ नियम, मन

---

१. 'लासन' एवं 'गार्बे' जैसे पश्चिमी विद्वानों का भी यही मत है।

२. पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' (जो संस्कृत व्याकरण का एक अद्वितीय ग्रंथ है) पर लिखा गया 'महाभाष्य'

की एकाग्रता का अभ्यास और अंतर्मुखी होकर चित्त को नितांत शुद्ध करने का उपाय[1]।

भारत के महान सम्राट अशोक भी बुद्ध की शिक्षा से खूब लाभान्वित हुए थे और उन्होंने इस जनोपयोगी शिक्षा का भारत में ही नहीं, अन्यान्य देशों में भी प्रचार-प्रसार करना अपने जीवन का ध्येय बना लिया था। उनके प्रयत्नों से करोड़ों लोग अंतर्दृष्टि की ध्यान-साधना करते हुए अपने-अपने दुःखों से छुटकारा पाकर वास्तविक सुख-शांति और सामंजस्य का जीवन जीने लगे थे।

सम्राट अशोक का शासनकाल तीसरी शताब्दी ईसापूर्व था। जिस काल में पतंजलि 'योगसूत्र' की रचना कर रहे थे, उस समय अशोक के प्रयत्नों के कारण जनमानस पर बुद्ध की शिक्षा का अत्यंत गहरा प्रभाव था। इसलिए पतंजलि (या किसी भी अन्य लेखक) के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने ग्रंथ में उस समय प्रचलित ध्यान-प्रणालियों की सारभूत बातों का समावेश करे जिनसे लोग सुपरिचित थे और उनका लाभ ले रहे थे। यही कारण है कि योगसूत्र में बुद्ध की शिक्षा का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है, भले ही सांख्य मत का भी कुछ असर दिखलाई देता है, जबकि लेखक द्वारा अपनी ओर से डाले गये संदर्भ भी स्पष्ट हैं ही[2]।

समस्त विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पतंजलि उस समय ध्यान के क्षेत्र में प्रचलित पद्धतियों में से जिन्हें वे सबसे अच्छा समझते थे उनके संहिताकार थे, यद्यपि उनकी रचना के बारे में प्रोफेसर ए० बी० कीथ[3] का मत इस प्रकार है – "यह एक भ्रामक ग्रंथ है जो व्यास द्वारा प्रणीत 'योगभाष्य' की सहायता से ही बुद्धिगम्य हो सकता है। व्यास ने इसके वास्तविक आशय को सही ढंग से प्रस्तुत किया या नहीं, यह संदिग्ध है। अधिक संभावना इस बात की है कि उसने अपने विचारों के अनुरूप इसे ढाला है।"

---

[1] जो 'सील', 'समाधि' और 'पञ्ञा' कहलाते हैं।

[2] उदाहरणतया – 'ईश्वरप्रणिधान' द्वारा एकाग्रता प्राप्त करना। ('समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्'। योग० २.४५)

[3] ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर' (रीप्रिंट १९४८) (पृ. ४९०)

प्रोफेसर कीथ का यह मत तथ्यों से एकदम परे नहीं है। यदि ग्रंथ की व्याख्या केवलमात्र परंपरागत भाष्यकारों की सहायता से की जाय [जिनके प्रमुख व्यास मुनि थे (चौथी शताब्दी ई०)], तो ग्रंथ का मूल पाठ सचमुच कुछ भ्रामक ही लगता है। योगसूत्र पर व्यास मुनि का योगभाष्य इसका प्राचीनतम एवं सबसे महत्त्वपूर्ण भाष्य है। आगे इस पर अनेक टीकाएं हुईं जिनमें नवमी शताब्दी में लिखी गई वाचस्पतिमिश्र की 'तत्त्ववैशारदी' प्राचीनतम है। अन्य महत्त्वपूर्ण व्याख्या ग्रंथ हैं- भोजदेव कृत 'राजमार्त्तण्डवृत्ति', रामानन्दयति कृत 'मणिप्रभावृत्ति', सदाशिवेन्द्र कृत 'योगसुधाकरवृत्ति', विज्ञानभिक्षु कृत 'योगवार्त्तिक', तथा भावगणेश कृत 'योगसूत्रदीपिका'।

इन भाष्यों एवं टीकाओं में मुख्य कमी यह प्रतीत होती है कि इनकी रचना उस काल में हुई जबकि संपूर्ण पालि आगम (जिसमें भगवान बुद्ध की मूल शिक्षा निहित थी) भारतभूमि से पूरी तरह विलुप्त हो चुका था। बुद्ध द्वारा सिखलायी गयी 'विपश्यना' ध्यान-साधना का अभ्यास भी भारत से लुप्त हो चुका था। यद्यपि पतंजलि अपने समय में प्रचलित बुद्ध की शिक्षा की मौखिक एवं जीवंत परंपरा से अभिज्ञ थे और इन दोनों का लाभ ले सकते थे, उनके भाष्यकार तथा टीकाकार इन दोनों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। इस वस्तुस्थिति के कारण योगसूत्र की व्याख्या करते समय इन भाष्यकारों ने जो व्याख्याएं प्रस्तुत कीं वे अपर्याप्त – और कहीं कहीं भ्रामक भी – रहीं[1]। इस त्रुटि को दूर करने का यही उपाय है कि पालि आगम में उपलब्ध बुद्ध की शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में योगसूत्र का नये सिरे से विवेचन किया जाय।

पतंजलि को यह श्रेय अवश्य जाता है कि वे केवल ६७७ शब्दों को काम में लेते हुए १९४ सूत्रों को रच कर योग जैसे गहन विषय पर एक संक्षिप्त, परंतु सारगर्भित, कृति प्रस्तुत कर पाये। स्पष्टतः इस प्रकार की कृति का वास्तविक मूल्यांकन विशद व्याख्याओं के आधार पर ही किया जा सकता

---

१. 'तत्त्ववैशारदी' में भी कहीं-कहीं 'योगभाष्य' की आलोचना की गयी है - जैसे कि यह बात अमुक सूत्र के दायरे में नहीं आती। (देखिए टीका, योग० ४.१५)

हैं। बुद्ध द्वारा दी गयी विस्तृत देशनाएं इस कार्य के निष्पादन में बहुत सहायता करती हैं।

योगसूत्र का विश्लेषण करते समय बुद्ध की देशनाओं को ध्यान में रखने के अनेक लाभ हैं: –

क अधिकांश सूत्रों का अर्थ करते समय पतंजलि के वास्तविक दृष्टिकोण का पता चलता है;

ख पारिभाषिक शब्दों की उत्पत्ति का इतिहास अथवा उनकी विस्तृत व्याख्या उपलब्ध होती है;

ग अनेक सूत्रों में निहित 'कैसे' और 'क्यों' का खुलासा हो जाता है;

घ वास्तविक अनुभव पर आधारित कितने ही दृष्टांत सुलभ हो जाते हैं; और

ङ किसी भी विचारणीय विषय से संबंधित ढेर-सारी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष जानकारी मिलती है।

उपर्युक्त बिंदुओं के क्रमानुसार उदाहरण इस प्रकार हैं: –

- "विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः" सूत्र[१] की उपयुक्त व्याख्या 'विशेषदर्शी' का अर्थ 'विपश्यी साधक' करने से हो सकती है जिसके लिए 'विशेषदर्शी' को 'वि-दर्शी' (पालि – 'वि-पस्सी') का विस्तारित रूप समझना होता है।
- योगसूत्र के अनुसार सब से ऊंची समाधि 'धर्ममेघ'[२] का उद्गम 'धम्ममेघ' शब्द में खोजा जा सकता है जिसका प्रयोग एक पालि ग्रंथ में हुआ है[३]।
- मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा के प्रसारण की विधि बुद्धवाणी में विस्तार से समझायी गयी है[४] जबकि संबंधित योगसूत्र की व्याख्या करते समय योगभाष्य में ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया है[५]।

---

१. योग० ४.२५

२. योग० ४.२९

३. बुद्ध-अपदान

४. म० नि० १.७७

५. योग० १.३३

- अनेक जीवंत उदाहरण मिलते हैं जिनसे 'सत्यक्रिया' (पालि–'सच्चकिरिया') अभ्यास के बारे में पता चलता है। इसके अंतर्गत घोषणा करने वाला व्यक्ति अपने द्वारा किये गये कृत्यों को ध्यान में रखते हुए सत्य पर आधारित कोई गंभीर घोषणा करता है, और इसके पुण्य के प्रताप से चाहा गया प्रभाव घटित होता है चाहे उसका स्वरूप कितना भी विस्मयकारी क्यों न हो। 'योगभाष्य' में ऐसे कोई उदाहरण नहीं मिलते हैं[१]।
- बुद्ध के अनेक शिष्यों के बारे में स्पष्ट जानकारी मिलती है कि उनको किस परिमाण में अलौकिक शक्तियां प्राप्त थीं, जैसे सारिपुत्त, महामोग्गल्लान, अनुरुद्ध, उप्पलवण्णा, इत्यादि[२]। योगभाष्य में शायद ही ऐसे किसी नाम का उल्लेख है।

यह पुस्तक योगसूत्र के पुनर्मूल्यांकन की दिशा में मात्र एक नन्हा-सा कदम है। इसमें किया गया विवेचन किसी भी प्रकार सर्वांगीण नहीं है। इस विषय में गहन शोध की आवश्यकता है जिससे इस विषय से संबंधित सारे तथ्य प्रकाश में आ सकें।

तात्कालिक संदर्भ हेतु योगसूत्र के सूत्रों को भी मूल रूप में इस पुस्तक के 'परिशिष्ट' के रूप में संलग्न कर दिया गया है।

पुस्तक पर रचनात्मक आलोचना का स्वागत है एवं भविष्य में किये जाने योग्य सुधारों के लिए सुझाव आमंत्रित हैं।

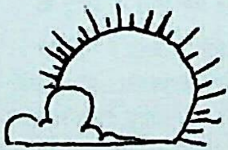
निदेशक,
विपश्यना विशोधन विन्यास,
इगतपुरी, महाराष्ट्र

---

१. संदर्भ – योग० २.३६
२. अ० नि० १.१.१९०

संकेत-चिह्न

अङ्गुत्तरनिकाय	- अ० नि०
अट्ठकथा	- अट्ठ०
अपदान	- अप० थेर०
अपदान	- अप० थेरी०
इतिवुत्तक	- इतिवु०
उदान	- उदा०
खुद्दकनिकाय	- खु० नि०
खुद्दकपाठ	- खु० पा०
चरियापिटक	- चरिया०
चूळवग्ग	- चूळव०
चूळनिद्देस	- चूळनि०
जयमङ्गल-अट्ठगाथा	- जयमङ्गल०
जातक	- जा०
थेरगाथा	- थेरगा०
थेरीगाथा	- थेरीगा०
दीघनिकाय	- दी० नि०
धम्मपद	- ध० प०
धम्मसङ्गणि	- ध० स०
नेत्तिप्पकरण	- नेत्ति०
पटिसम्भिदामग्ग	- पटि० म०
पुग्गलपञ्ञत्ति	- पु० प०
परिवार	- परि०
पाचित्तिय	- पाचि०
पाराजिक	- पारा०
मज्झिमनिकाय	- म० नि०
योगसूत्र	- योग०
विभङ्ग	- विभ०
विसुद्धिमग्ग	- विसुद्धि०
संयुत्तनिकाय	- सं० नि०
सुत्तनिपात	- सु० नि०

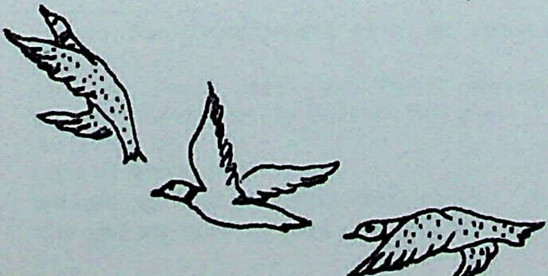




खंड १

बुद्ध की शिक्षा के अनुकूल विषय

क. अवधारणाएं



● दुःख के तीन पक्ष –

पतंजलि ने दुःख के तीन पक्ष बतलाये हैं: 'परिणामदुःख' (परिवर्तन के कारण दुःख), 'तापदुःख' (घोर व्यथा के कारण दुःख), तथा 'संस्कारदुःख' (संस्कारजनित दुःख)[१]।

बुद्ध ने भी दुःख की तीन स्थितियां स्पष्ट की हैं: 'दुक्खदुक्खता,' 'सङ्खारदुक्खता' तथा 'विपरिणामदुक्खता'[२]।

बुद्ध ने 'दुक्खदुक्खता' का जो अभिप्राय बतलाया है, उसी अर्थ में पतंजलि ने 'तापदुःख' बतलाया है, क्योंकि संस्कृत साहित्य में 'दुःख' एवं 'ताप' समानार्थी शब्द हैं।

● विवेकशील के लिए मात्र दुःख ही है –

पतंजलि का कथन है कि विवेकशील के लिए इस संसार में मात्र दुःख ही है[३]।

बुद्ध का भी यही मंतव्य है। इनकी शिक्षा के अनुसार भी दुःख सर्वत्र व्याप्त है। यहां तक कि आनंद में भी दुःख छिपा रहता है, क्योंकि सदैव इसे खोने की चिंता सिर पर सवार रहती है, और यह भय बना रहता है कि इसके समाप्त होने पर क्या होगा? विवेकपूर्वक देखने पर स्पष्ट होगा कि किसी भी प्रकार के संचय, जोड़, गठबंधन, संघटन मात्र दुःख ही लाते हैं[४]।

बुद्ध ने यह भी प्रज्ञप्त किया है कि साधारण व्यक्ति जिसे 'सुख' की संज्ञा देते हैं आर्यजन उसे 'दुःख' के नाम से पुकारते हैं[५]।

---

१. परिणाम-ताप-संस्कार-दुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः॥ (योग० २.१५)

२. "तिस्सो इमा, भिक्खवे, दुक्खता। कतमा तिस्सो? दुक्खदुक्खता, सङ्खारदुक्खता, विपरिणामदुक्खता – इमा खो, भिक्खवे, तिस्सो दुक्खता।...." (सं० नि० ३.१.१६५)

३. दुःखमेव सर्वं विवेकिनः०॥ (योग० २.१५)

४. 'सब्बे सङ्खारा दुक्खा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति। (धम्मप० २७७)

५. 'यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो'। (सु०नि० ७६७)

बुद्ध की शिक्षा है कि कोई भी व्यक्ति शरीर पर जिन संवेदनाओं को अनुभव करता है, वे मात्र दुःख ही हैं। इसका आशय यह है कि केवल 'दुक्ख-वेदना' (अप्रिय संवेदना) ही दुःख नहीं लाती बल्कि 'सुख-वेदना' (प्रिय संवेदना) एवं 'अदुक्खमसुख-वेदना (दुःख-सुख-रहित संवेदना) भी दुःख ही लाती हैं क्योंकि ये संवेदनाएं भी अनित्य, नश्वर होती हैं[१]।

परिवर्तनशील होने के कारण 'सुख' की अनुभूति 'दुःख' में पलट जाने वाली बात को बुद्ध तथा पतंजलि दोनों ने ही लगभग एक ही प्रकार से अभिव्यक्त किया है। इसे बुद्ध कहते हैं 'विपरिणामदुक्खता'[२] और पतंजलि 'परिणामदुःख'[३]।

● **'अज्ञान': 'प्रज्ञा' के विपरीत स्थिति –**

योगसूत्र में 'अविद्या' (अज्ञान) की परिभाषा की गयी है – दोषपूर्ण संज्ञान के कारण 'अनित्य,' 'अशुचि,' 'दुःख' एवं 'अनात्म' में, क्रमशः, 'नित्य', 'शुचि', 'सुख' एवं 'आत्म' की अनुभूति करना[४]।

यह परिभाषा बुद्ध की शिक्षा के अंतर्गत विवेचित 'पञ्ञा' (प्रज्ञा) शब्द के विविध पहलुओं की याद दिलाती है – 'अनिच्च,' 'अनत्ता,' 'दुक्ख' तथा 'असुभ' (यानि अनित्य, अनात्म, दुःख और अशुचि)[५]।

● **चार उन्नत अवस्थाएं –**

योगसूत्र में कहा गया है कि सुख, दुःख, पुण्य, अपुण्य के प्रति मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षाभाव भावित करने से मानसिक शांति मिलती है[६]।

१. 'यं किञ्चि वेदयितं तं दुक्खस्मिं'। (म० नि० ३.२९९)
२. सं० नि० २.२.३२७
३. परिणाम-ताप-संस्कार-दुःखैः०। (योग० २.१५)
४. अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या। (योग० २.५)
५. अनिच्चं निच्चसञ्ञिनो, दुक्खे च सुखसञ्ञिनो,
अनत्तनि च अत्तानि, अनिच्चे सुभसञ्ञिनो। (पटि० म० २३६)
६. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। (योग० १.३३)

इन्हीं चार गुणों को बुद्ध की शिक्षा में 'अप्पमञ्ञ' (अप्रमाण अवस्था) अथवा 'ब्रह्मविहार' कहा गया है। इन अवस्थाओं के नाम भी उसी क्रम में हैं– 'मेत्ता', 'करुणा', 'मुदिता' तथा 'उपेक्खा'[१]।

● चार प्रकार के कर्म–

योगसूत्र में उल्लेख है कि योगी के कर्म न तो शुक्ल (=शुभ्र) होते हैं, न कृष्ण (=कलुष) (अशुक्लाकृष्णं), जबकि अन्य लोगों के कर्म तीन प्रकार के होते हैं (त्रिविधं)[२]। इस प्रकार कुल चार प्रकार के 'कर्म' बतलाये हैं।

बुद्ध की शिक्षा भी इसी प्रकार की है। उन्होंने जिस प्रकार के कर्म बतलाये हैं वे हैं– 'कण्ह', 'सुक्क', 'कण्हसुक्क' और 'अकण्ह असुक्क' (अर्थात, कृष्ण, शुक्ल, कृष्णशुक्ल तथा अकृष्ण अशुक्ल)[3]।

● योग के चार अंग–

'योग' (योगव्यूह) के चार अंग बतलाये गये हैं; दुःख, दुःख का कारण, दुःख का अवसान तथा दुःख के अवसान का उपाय। इन्हें क्रमानुसार कहा गया है– 'हेय', 'हेयहेतु', 'हान' और 'हानोपाय'[४]।

यह विभाजन बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्यसत्यों ('अरिय-सच्च') के अनुरूप है। आर्यसत्य हैं: दुःख, दुःख का कारण, दुःख का अवसान और दुःख के अवसान हेतु आर्य अष्टांगिक मार्ग। इन्हें क्रमानुसार कहा गया है: 'दुक्ख', 'दुक्खसमुदय', 'दुक्खनिरोध' एवं 'दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा'।

पतंजलि द्वारा प्रयुक्त शब्द 'हान' बुद्ध की शिक्षा में 'पहान' के रूप में मिलता है, जैसे 'पहानं कामसञ्ञानं'[५] जबकि 'हान' शब्द का प्रयोग

---

१. विभ० ६४२
२. कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्। (योग० ४.७)
३. कम्मं...कण्हं...सुक्कं...कण्हसुक्कं...अकण्हं असुक्कं...। (अ० नि० २.४.२३३)
४. योग० (२.१६,१७,२५,२६)
५. अ० नि० १.३.३३

समस्तपदों (समासों) के अंश के रूप में पाया जाता है – जैसे, 'ज्ञानभागिया सञ्ञा'[१]।

● 'विरति': योग का प्रथम अंग –

योग के आठ अंगों में से प्रथम को 'यमाः' (विरति, निग्रह) कहा गया है। इसके अंतर्गत 'अहिंसा,' 'असत्य,' 'अस्तेय' (चोरी), 'अब्रह्मचर्य' एवं 'अपरिग्रह'[२] से विरत होना बतलाया है।

बुद्ध द्वारा प्रज्ञप्त आर्य अष्टांगिक मार्ग के तीन अंगों – 'सम्माकम्मन्तो' (सम्यक कायिक कर्म), 'सम्मावाचा' (सम्यक वाणी) एवं 'सम्मासङ्कप्पो' (सम्यक संकल्प) में इन निवृत्तियों का विधान होने के इलावा अन्य बातों का भी उल्लेख है[३]।

● निरोध-प्राप्ति में सहायक घटक –

योगसूत्र के अनुसार साधारण योगी के लिए निरोध-प्राप्ति में सहायक घटक हैं – 'श्रद्धा' (आस्था), 'वीर्य' (पराक्रम), 'स्मृति' (जागरूकता), 'समाधि' (चित्त की एकाग्रता) और 'प्रज्ञा' (अंतर्दृष्टि पर आधारित ज्ञान)[४]।

बुद्ध के अनुसार भी यही घटक – 'सद्धा', 'वीरिय,' 'सति', 'समाधि' और 'पञ्ञा' – पांच मानसिक 'बल'[५] होते हैं। ये पांच 'इन्द्रियां'[६] भी

---

१. अ० नि० २.४.१७९
२. तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। (योग० २.३०)
३. पाणातिपाता वेरमणी (अहिंसा), मुसावादा वेरमणी (सत्य), अदिन्नादाना वेरमणी (अस्तेय), कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी (ब्रह्मचर्य), नेक्खम्मसङ्कप्पो (अपरिग्रह) (विभ० २०५)
४. श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्। (योग० १.२०)
५. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि पञ्च? सद्धाबलं, वीरियबलं, सतिबलं, समाधिबलं, पञ्ञाबलं - इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च बलानी"ति। (अ० नि० ३.५.२०४)
६. पञ्चिन्द्रियानिः सद्धिन्द्रियं, वीरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। (दी० नि० ३.३५५)

कहलाती हैं क्योंकि जब कोई इन पर प्रभुत्व जमाना चाहता है तब ये अंतिम लक्ष्य प्राप्त करने में सहायता करने लगती हैं।

● 'प्रज्ञा' (अंतर्दृष्टि पर आधारित ज्ञान) के तीन प्रकार –

पतंजलि के अनुसार जब ध्यान के विषय के प्रति बिना दीर्घ अवधान के (जिसे 'निर्विचार समाधि'[1] कहते हैं) एकाग्रता में विश्वास जमने लगता है तब आंतरिक शांति प्राप्त होती है। उस अवस्था में अंतर्दृष्टि पर आधारित सत्य-पूरित ज्ञान जागता है जिसे 'ऋतम्भरा प्रज्ञा'[2] कहते हैं। अंतर्दृष्टि पर आधारित यह ज्ञान (प्रज्ञा) दो अन्य प्रकार की प्रज्ञा से भिन्न होता है जिन्हें 'श्रुत' (श्रवण की गयी) और 'अनुमान' (अनुमान पर आधारित) नाम से जाना जाता है। इसका कारण यह है कि इसका उद्देश्य अलग ही प्रकार का होता है और महत्त्व भी विशेष होता है (विशेषार्थत्वात्)[3]।

बुद्ध ने भी तीन प्रकार की प्रज्ञा ('पञ्ञा') का उल्लेख किया है– 'सुतमया' (दूसरे से सुन कर प्राप्त हुआ ज्ञान), 'चिन्तनमया' (दूसरे से अनसुना, अर्थात अपना, बौद्धिक ज्ञान) और 'भावनामया'[4] (स्वानुभव पर आधारित ज्ञान)। इन तीनों में से अंतिम प्रकार का ज्ञान मन को निर्मल बनाता है और इसीलिए यह अन्य दोनों प्रकार के ज्ञान से नितांत भिन्न प्रकार का होता है।

चूंकि 'भावनामया पञ्ञा' स्वानुभव पर आधारित होने के कारण सभी प्रकार की कल्पनाओं एवं अनुमानों से मुक्त होती है, इसलिए यह अंतर्भूत सत्य का उद्घाटन करती है। अतः पतंजलि द्वारा उल्लेखप्राप्त 'ऋतम्भरा प्रज्ञा'[5] को बुद्ध द्वारा प्रज्ञप्त 'भावनामया पञ्ञा' के अर्थ में ग्रहण करना ही समीचीन प्रतीत होता है।

---

१. निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः। (योग० १.४७)
२. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा। (योग० १.४८)
३. श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्। (योग० १.४९)
४. सुतमया (परतो सुत्वा पटिलभति)। चिन्तनमया (परतो अस्सुत्वा पटिलभति)। भावनामया (सब्बापि समापन्नस्स पञ्ञा)। (विभ० ७५३)
५. योग० (१.४८)

वुद्ध ने 'ऋत' (सत्य) को प्रकृति का विधान स्वीकार किया और इसे 'धम्मट्ठितता' अथवा 'धम्मनियामता' की संज्ञा दी। उन्होंने स्पष्ट किया कि प्रकृति के नियम शाश्वत हैं और वे इस वात की अपेक्षा नहीं रखते कि किसी कालविशेष में इस संसार में कोई सम्यकसंवुद्ध विद्यमान हैं या नहीं[१]। वस्तुतः सम्यकसंवुद्ध की भूमिका तो इतनी ही होती है कि वह प्रकृति के नियमों का अपनी अंतर्दृष्टि से सही-सही ज्ञान प्राप्त कर इन्हें दूसरों के लिए आख्यात कर दें[२]।

● मन की कलुषताएं –

पतंजलि के अनुसार 'क्रियायोग' का उद्देश्य है 'समाधि' का विकास और मन की कलुषताओं ('क्लेशों') का क्षय। ये कलुषताएं हैं– 'अविद्या' (अज्ञान), 'अस्मिता' (अहंभाव), 'राग' (चाह), 'द्वेष' (वैर) और 'अभिनिवेश' (जीवन के प्रति अत्यधिक आसक्ति)[३]।

वुद्ध ने दस कलुषताओं को 'किलेस' वतलाया है जो इस प्रकार हैं– 'लोभ' (लालच), 'दोस' (द्वेष), 'मोह' (भ्रम), 'मान' (अहंकार), 'दिट्ठि' (मिथ्या धारणा), 'विचिकिच्छा' (संदेह), 'थिन' (मानसिक जड़ता), 'उद्धच्च' (वेचैनी), 'अहिरिक' (निर्लज्जता) तथा 'अनोत्तप्प' (कर्तव्यनिष्ठा का अभाव)[४]। इनमें से पतंजलि ने प्रथम चार का ही चयन किया लगता है जैसे कि अर्थ की दृष्टि से 'लोभ' 'राग' और 'अभिनिवेश' के अनुरूप है, 'दोस' 'द्वेष' के, 'मोह' 'अविज्जा' के और 'मान' 'अस्मिता' के।

---

१. उप्पादा वा, भिक्खवे, तथागतानं अनुप्पादा वा तथागतानं, ठिता व सा धातु धम्मट्ठितता धम्मनियामता। (अ० नि० १.३.१३७)

२. अभिसम्बुज्झित्वा अभिसमेत्वा आचिक्खति देसेति पञ्ञापेति पट्ठपेति विवरति। (अ० नि० १.३.१३७)

३. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः॥ (योग० २.३)

४. इनकी व्याख्या ध० स० १२३५ में की गयी है और विभ० ९६६ में नाम लेकर गिनाये गये हैं।

● 'ईश्वर' की विशेषताएं –

योगसूत्र के अनुसार 'ईश्वर' एक प्रकार का विशिष्ट पुरुष ('पुरुषविशेषः') है जो सभी प्रकार के विघ्नों (क्लेशों), कर्मों (कर्म), परिणामों ('विपाक') एवं अंतर्हित निक्षेपों ('आशय') से सर्वथा अप्रभावित रहता है[१]।

बुद्ध की शब्दावली में ऐसा पुरुष 'अर्हन्त' कहलायगा चूंकि वह भी विघ्नों ('किलेस'), कर्मों ('कम्म'), परिणामों ('विपाक') और अंतर्हित निक्षेपों ('आसय') से अप्रभावित रहता है।

यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि बुद्ध के समान पतंजलि भी किसी ऐसे ईश्वर की कल्पना नहीं करते हैं जो संसार का निर्माता हो, अथवा सांसारिक घटनाओं और मानवीय कृत्यों को नियंत्रित करता हो। दोनों ही 'ईश्वर' की 'शुचिता' को महत्त्व देते हैं, न कि उसकी शक्ति को।

● 'राग' और 'द्वेष' की परिभाषाएं –

योगसूत्र में 'राग' (चाह) और 'द्वेष' (वैर) की परिभाषा में कहा गया है कि ये, क्रमशः, अंतर्हित पूर्वाग्रहों ('अनुशयी') के साथ सुख और दुःख की अनुभूतियां हैं[२]।

पतंजलि द्वारा 'अनुशयी' (अंतर्हित पूर्वाग्रह के साथ) शब्द का प्रयोग बुद्ध की शिक्षा के प्रभाव का संकेत करता है। बुद्ध ने भी अंतर्हित पूर्वाग्रहों के बारे में कहा है; जैसे 'कामरागानुसयो' (ऐंद्रिय लोलुपता के प्रति अंतर्हित पूर्वाग्रह), 'पटिघानुसयो' (वैर के प्रति अंतर्हित पूर्वाग्रह), आदि[३]। ऐंद्रिय लोलुपता के प्रति अंतर्हित पूर्वाग्रहों की प्रकृति 'राग' की होती है और वैर के प्रति अंतर्हित पूर्वाग्रहों की प्रकृति 'द्वेष' की।

---

१. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। (योग० १.२४)
२. सुखानुशयी रागः। दुःखानुशयी द्वेषः। (योग० २. ७-८)
३. अं० नि० ४.७.१२

बुद्ध के विषय में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने अंतर्हित पूर्वाग्रहों (अनुसयों) को सर्वथा समाप्त कर डाला था[१]।

● संवेगः पूर्ण मुक्ति हेतु उत्प्रेरक शक्ति –

योगसूत्र में यह कहा गया है कि जो व्यक्ति कठिन उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने को पूरे संवेग के साथ लगा देते हैं, उनके लिए 'निरोध' की अवस्था सन्निकट ही होती है[२]।

बुद्ध की शिक्षा में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें संवेग जागने पर संविग्न व्यक्ति शीघ्र ही पूर्ण मुक्ति की अवस्था प्राप्त कर लेता है[३]।

बुद्ध 'संवेग' जागने को बड़ा महत्त्व देते थे[४]।

● 'वितर्क' (विचार-अवधारणा) और उसके तीन अंग –

योगसूत्र में हिंसा आदि ('हिंसादय:') वितर्कों के तीन अंग बतलाये गये हैं– करना, करवाना या ऐसे कृत्य का अनुमोदन करना[५]।

बुद्ध ने भी इन तीनों अंगों के बारे में कहा है–

"भिक्षुओ! तीन धर्मों (दुर्गुण के अर्थ में) से युक्त प्राणी ऐसा होता है जैसे लाकर नरक में डाल दिया गया हो। कौन-से तीन?

"जो स्वयं जीव-हत्या करता है, दूसरे को हत्या के लिए प्रेरित करता है और हत्या का अनुमोदन करता है[६]।"

---

१. तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं माराभिभू मुनि।
तुवं अनुसये छेत्वा, तिण्णो तारेसिमं पजं॥ (म० नि० २.४००)

२. तीव्रसंवेगानामासन्नः॥ (योग० १.२१)

३. यथा– एतमादीनवं ञत्वा, संवेगं अलभिं तदा।
सोहं विद्धो तदा सन्तो, सम्पत्तो आसवक्खयं॥ (थेरगा० ७९१)
और अधिक संदर्भों के लिए देखिए– थेरगा० ३८० तथा ५१७

४. आतापिनो संवेगिनो भवाथ। (ध० प० १४४)

५. वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता:०॥ (योग० २.३४)

६. "तीहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि तीहि? अत्तना च पाणातिपाती होति, परञ्च पाणातिपाते समादपेति, पाणातिपाते च समनुञ्ञो होति।" (अ० नि० १६४-१८३)

पतंजलि ने विभिन्न अवधारणाओं को बिना स्पष्ट नाम दिये उनको मात्र 'वितर्का हिंसादय:' कहा है, यानें विचार-अवधारणा, जैसे हिंसा आदि। किंतु बुद्ध की शिक्षा में इनको विस्तार से समझाया गया है, जैसे 'विहिंसा' (हिंसा), 'व्यापाद' (दुर्भाव), 'काम' (कामुकता) और इनके विपरीत भाव – 'अ-विहिंसा', 'अ-व्यापाद' तथा 'नेक्खम्म'। इनमें से प्रथम तीन कर्म की दृष्टि से अहितकर एवं त्याज्य हैं और अंतिम तीन इनसे सर्वथा विपरीत।

● विचार-अवधारणा ('वितर्क') द्वारा उत्पीड़नः इससे छुटकारा पाना –

योगसूत्र में आदेशना है कि यदि कोई व्यक्ति किसी विचार-अवधारणा से उत्पीड़ित हो तो इस स्थिति से बचने के लिए उसको तद्विपरीत भावना करनी चाहिए[१]।

यह आदेशना बुद्ध की शिक्षा के अनुरूप ही है जिसमें भी वैपरीत्य का निम्न प्रकार से विधान किया गया है: –

(क) 'राग' के उन्मूलन हेतु 'घृणित' की भावना।
(ख) 'द्वेष' के उन्मूलन हेतु 'मैत्री' भावना।
(ग) 'भ्रम' के उन्मूलन हेतु 'प्रज्ञा' की भावना[२]।

● उन्नत अवस्थाओं से संबद्ध शक्तियां –

योगसूत्र में उन शक्तियों ('बलानि') के संबंध में बतलाया गया है जो मैत्रीभावना और अन्य उन्नत अवस्थाओं के नियंत्रण से प्राप्त होती हैं[३]।

बुद्ध की शिक्षा के अनुसार मैत्रीभावना ('मेत्ताभावना') करने वाले को निम्न प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं: –

वह सुखचैन से सोता है; सुखपूर्वक जागता है; दुःस्वप्न नहीं देखता है; मनुष्यों का प्रिय होता है; मनुष्येतर प्राणियों का प्रिय होता है; देवी-देवता

---

१. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्॥ (योग० २.३३)
२. रागस्स पहानाय असुभा भावेतब्बा, दोसस्स पहानाय मेत्ता भावेतब्बा, मोहस्स पहानाय पञ्ञा भावेतब्बा। (अ० नि० ४.६.१०७)
३. मैत्र्यादिषु बलानि॥ (योग० ३.२२)

उसकी रक्षा करते हैं; अग्नि, विष और अस्त्रों से अप्रभावित रहता है; चाहे वह और आगे न भी बींध पाये पर ब्रह्मलोक तक तो पैठ ही जाता है[१]।

- **अहिंसाभाव में परिपुष्ट व्यक्ति की उपस्थिति से वैर-भाव का जाते रहना –**

योगसूत्र में बतलाया गया है कि जो व्यक्ति 'अहिंसा' भाव में परिपुष्ट हो जाता है, उसकी उपस्थिति मात्र से वैर-भाव जाने लगता है ('वैरत्यागः')[२]।

पालि तिपिटक में इस प्रकार के कथन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, जैसे – "जिस व्यक्ति के मानस में दूसरों के प्रति अहिंसा का भाव दृढ़ हो जाता है, उसमें समस्त प्राणियों के प्रति हर समय मैत्री जागती है। उसके प्रति कोई भी व्यक्ति शत्रुता के भाव नहीं रखता है[३]।

यह सर्वविदित है कि उन्मत्त हाथी नाळागिरि बुद्ध के समीप जाकर शांत और स्थिर हो गया, क्योंकि बुद्ध अहिंसाभाव में पूरी तरह से प्रतिष्ठित थे। बुद्ध अहिंसा के पुजारी थे और सदा मैत्री बिखेरते रहते थे। मैत्री का अद्भुत प्रभाव मात्र मनुष्यों पर ही नहीं अपितु पशुओं पर भी पड़ता था[४]।

'पञ्चतन्त्र' नामक पुस्तक में एक विचित्र संदर्भ आया है कि महान व्याकरणाचार्य पाणिनि का प्राणांत एक सिंह द्वारा हुआ, मुनि जैमिनि का

---

१. "सुखं सुपति, सुखं पटिबुज्झति, न पापकं सुपिनं पस्सति, मनुस्सानं पियो होति, अमनुस्सानं पियो होति, देवता रक्खन्ति, नास्स अग्गि वा विसं वा सत्थं वा कमति, उत्तरिं अप्पटिविज्झन्तो ब्रह्मलोकूपगो होति।" (अ० नि० ५.८.१)

२. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः॥ (योग० २.३५)

३. "यस्स सब्बमहोरत्तं, अहिंसाय रतो मनो। मेत्तं सो सब्बभूतेसु, वेरं तस्स न केनची"ति। (सं० नि० १.१.२३८ मणिभद्दसुत्त)

४. नाळागिरिं गजवरं अतिमत्तभूतं, दावग्गि चक्कमसनीव सुदारुणन्तं। मेत्तम्बुसेकविधिना जितवा मुनिन्दो, तं तेजसा भवतु ते जयमङ्गलानि॥ (जयमङ्गलअट्ठगाथा ३) इस घटना की विस्तृत जानकारी के लिए देखिए – चूळव० ३४२

एक हाथी द्वारा, और आचार्य पिङ्गल का एक घड़ियाल द्वारा[१]। इससे ऐसा लगता है कि संभवतः ये सभी लोकविश्रुत व्यक्ति जिन्होंने 'व्याकरण', 'मीमांसा' और 'छन्दःशास्त्र' पर अद्भुत ग्रंथ लिखे थे, या तो मैत्रीभावना से अनभिज्ञ थे अथवा इसमें अपुष्ट थे।

● 'सन्तोष': परम सुख का अपूर्व स्रोत –

योगसूत्र के अनुसार सन्तोष से परम सुख प्राप्त होता है[२]।

पालि आगम के अनुसार 'सन्तोष' एक उत्कृष्ट संपदा है[३]। यह उन तीन अनुशासनों में से प्रमुख है जिसका संवर्धन कोई प्रज्ञासंपन्न भिक्षु प्रारंभ से ही करने लगता है[४]।

● मन की वशीकरण शक्ति –

योगसूत्र में मानसिक एकाग्रता के लिए कुछ आलंबन गिनाने के पश्चात्[५] मन की वशीकरण क्रिया ('वशीकार') के लिए कहा गया है कि इसकी सीमाएं हैं – लघिमा (अत्यंत छोटा हो जाना) और महिमा (अत्यंत बड़ा हो जाना) ('परमाणुपरममहत्त्वान्तः')[६]।

बुद्ध की शिक्षा के अनुसार भी मन की एकाग्रता के लिए विहित चालीस प्रकार के आलंबनों में से एक 'पठवी-कसिण' द्वारा मन ऐसी अवस्था प्राप्त

---

१. सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत्, प्राणान्प्रियान् पाणिनेः।
मीमांसाकृतमुन्ममाथ सहसा, हस्ती मुनिं जैमिनिं॥
छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो, वेलातटे पिङ्गलं।
अज्ञानावृतचेतसामतिरुषां, को अर्थस्तिरश्चां गुणैः॥ (पञ्चतन्त्र २.३३)

२. सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः॥ (योग० २.४२)

३. सन्तुट्ठि परमं धनं। (ध० प० २०४)

४. तत्रायमादि भवति, इध पञ्ञस्स भिक्खुनो।
इन्द्रियगुत्ति सन्तुट्ठि, पातिमोक्खे च संवरो॥ (ध० प० ३७५)

५. योग० (१.३५-३९)

६. परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः॥ (योग० १.४०)

करने में सफल हो जाता है जहां वह सूक्ष्म और विराट दोनों प्रकार की वस्तुओं पर पूर्ण नियंत्रण (आधिपत्य) प्राप्त कर सकता है[१]।

● देह से प्रकाश का प्रस्फुटन –

कोई योगी जब 'समान' नाम की प्राणवायु पर संपूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लेता है तब कहा जाता है कि वह एक आभा से आवृत रहता है[२]।

बुद्ध की देह से भी फूटने वाले ऐसी आभा के अनेक प्रसंग हैं। कहा जाता है कि दो विशिष्ट अवसरों पर तो तथागत की त्वचा अत्यंत देदीप्यमान हो उठी थी: जिस रात उन्हें सम्यकबोधि प्राप्त हुई और जिस रात उन्होंने निर्वाणलाभ किया[३]।

● चित्त के समान वेग –

योगसूत्र के अनुसार कोई योगी अपने शरीर की गति को अपने मन की गति के समान तेज बना सकता है[४]।

बुद्ध के विषय में जनश्रुति है कि उन्होंने पाटलिगाम नामक स्थान पर गंगा को उस समय पार किया था जब नदी में बाढ़ आयी हुई थी। कहा जाता है कि उन्होंने उतनी ही तत्क्षणता से नदी को पार किया था जितने क्षणों में कोई बलिष्ट व्यक्ति अपनी बांह को फैलाकर वापस समेट ले। वे नदी के एक तट से अदृश्य होकर तत्क्षण दूसरे तट पर जा प्रकट हुए[५]।

● कृत्यों और उनके परिणामों पर संपूर्ण नियंत्रण –

यह प्रज्ञाम किया गया है कि जब कोई योगी अपने आपको 'सत्य' में स्थिर कर लेता है तब उसका कृत्यों और उनके परिणामों पर पूर्ण नियंत्रण हो जाता है[६]।

---

१. विसुद्धि० १.१००
२. समानजयाज्ज्वलनम्॥ (योग० ३.४०)
३. दी० नि० २.१५४
४. ततो मनोजवित्वं०। (योग० ३.४८)
५. दी० नि० २.१५४
६. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्॥ (योग० २.३६)

बुद्ध के काल में ऐसी अद्भुत घटनाएं 'सच्चकिरिया' (संस्कृत–सत्यक्रिया) कहलाती थीं। इस क्रिया के अंतर्गत ऐसी घोषणा करने वाला साधक अपने इस जन्म में या किसी पूर्व जन्म में किये गये कार्यों के प्रति सत्य पर आधारित घोषणा किया करता था जिसके पुण्य के प्रभाव से अभीष्ट घटना घट जाती थी, चाहे उसका स्वरूप कितना भी विस्मयकारी क्यों न हो। इससे संबंधित दो उदाहरण नीचे दिये गये हैं:

❶ "जहां तक मुझे स्मरण है और जब से मैं प्रज्ञा में स्थित हुआ हूं, मैं निश्चयपूर्वक जानता हूं कि मैंने किसी भी प्राणी को पीड़ा नहीं दी है। मेरी इस सत्य पर आधारित घोषणा के फलस्वरूप धरती पर वृष्टि हो[1]!"

❷ "मेरी सत्य के प्रति निष्ठा मेरी वर्तमान व भविष्य की घोषणाओं में मेरी सहायता करे। मैं निश्चयपूर्वक जानता हूं कि मेरे लिए तुमसे अधिक प्रिय कोई नहीं है। सत्य पर आधारित मेरी इस घोषणा से तुम्हारा रोग जाता रहे[2]!"

● **परचित्त ज्ञान –**

योगसूत्र में उल्लेख है कि अन्य व्यक्ति के प्रत्ययों पर एकाग्रता साधकर उसके चित्त की जानकारी की जा सकती है ('परचित्तज्ञानं')[3], भले ही इन प्रत्ययों के आलंबन या आधार का ज्ञान न भी हो[4]। 'योगभाष्य' में इसे उदाहरण देकर समझाया गया है कि एक योगी यह जान सकता है कि दूसरे व्यक्ति का चित्त राग से परिपूर्ण है, किंतु वह नहीं जान पाता कि इसका आधार क्या है।

---

१. "यतो सरामि अत्तानं यतो पत्तोस्मि विञ्ञुतं।
नाभिजानामि सञ्चिच्च एकपाणं विहिंसितं।
एतेन सच्चवज्जेन पज्जुन्नो अभिवस्सतु॥"(चरिया० ३.८८)

२. "तथा मे सच्चं पालेतु पालयिस्सति चे ममं।
यथाहं नाभिजानामि अञ्ञं पियतरं तया।
एतेन सच्चवज्जेन व्याधि ते वूपसम्मतु॥ (जा० १.३२३)

३. प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्॥ (योग० ३.१९)

४. न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात्॥ (योग० ३.२०)

बुद्ध की शिक्षा में 'चेतो-परिय-आणं' (परचित्तज्ञान) नामक असाधारण ज्ञान का उल्लेख है। यह ज्ञान भी पूर्ण मानसिक एकाग्रता साधकर प्राप्त किया जाता है। ऐसा व्यक्ति अपने चित्त से दूसरों के चित्त को भेदकर उनको जान सकता है। वह 'लोभी' चित्त को 'लोभी' और 'अ-लोभी' चित्त को 'अ-लोभी' जान पाता है और ऐसे ही चित्त की अन्य स्थितियों को भी[१]। इस प्रकार इस प्रकरण में भी सिद्ध व्यक्ति समयविशेष पर चित्त की गुणवत्ता को जान सकता है पर इसके आधार को नहीं, यद्यपि वह दूसरे चित्त का लक्षण समझ सकता है।

● अवचेतन के संस्कारों के प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा पूर्वजन्मों का ज्ञान –

योगसूत्र में कहा गया है कि अवचेतन के संस्कारों के प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा ('संस्कारसाक्षात्करणात्')[२] पूर्वजन्मों का ज्ञान ('पूर्वजातिज्ञानं') प्राप्त होता है। एक अन्य स्थान पर यह भी कहा गया है कि 'स्मृति' और 'अवचेतन के संस्कारों' के लक्षण समान होते हैं[३]। इससे यह आशय भी निकलता है कि स्मृतियों के प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा भी पूर्वजन्मों का ज्ञान हो सकता है। बुद्ध ने भी यही देशना की थी:

"भिक्षुओ! किन धर्मों का स्मृति द्वारा साक्षात ज्ञान करना होता है? भिक्षुओ! पूर्वजन्म का साक्षात ज्ञान स्मृति (जागरूकता) द्वारा करना चाहिए[४]।"

● मृत्यु का ज्ञान ('अपरान्तज्ञानम्') –

योगसूत्र के अनुसार एक योगी मृत्यु का ज्ञान प्राप्त कर सकता है[५]।

१. सो परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानाति – सरागं वा चित्तं सरागं चित्तन्ति पजानाति, वीतरागं वा चित्तं वीतरागं चित्तन्ति पजानाति। (दी० नि० १.२४२)

२. संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्॥ (योग० ३.१८)

३. स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्॥ (योग० ४.९)

४. "कतमे च, भिक्खवे, धम्मा सतिया सच्छिकरणीया? पुब्बेनिवासो, भिक्खवे, सतिया सच्छिकरणीयो।" (अ० नि० २.४.१८९)

५. सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानम्॥ (योग० ३.२१)

स्वयं बुद्ध ने अपनी मृत्यु के बारे में भविष्यवाणी की थी: "अब से तीन माह बीतने पर तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे[1]।"

● **अदृश्य होने की शक्ति ('अन्तर्धानम्') –**

योगसूत्र के अनुसार एक योगी अकस्मात अदृश्य हो जाने की शक्ति प्राप्त कर सकता है[2]।

आगम के एक ग्रंथ में उल्लेख है कि बुद्ध ब्रह्मांड के अनेक ग्रहों में उत्कृष्ट जीवों की सभा में धर्मदेशना देकर अदृश्य हो जाया करते थे। तब उस सभा में उपस्थित जीव अचंभे में पड़ जाते थे – "इस प्रकार अदृश्य होने वाला कौन हो सकता है – कोई मनुष्य अथवा देवता[3]?"

● **दैवी प्रलोभन –**

पतंजलि ने देवी-देवताओं द्वारा दिये जाने वाले प्रलोभनों के प्रति सचेत किया है[4]।

कितने ही अवसरों पर देवपुत्र 'मार' प्रलोभन दे देकर बुद्ध को पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न करता रहता था पर वह सदैव अपने उद्देश्य में विफल रहा। संबोधि प्राप्त कर लेने के उपरांत बुद्ध को उसकी पुत्रियां – तण्हा, अरति और रगा – ने पथभ्रष्ट करने का भरसक प्रयास किया पर वे भी इसमें असफल रहीं[5]।

---

१. "इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सति।" (दी० नि० २.१८५)
२. कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासंप्रयोगे अन्तर्धानम्॥ (योग० ३.२०)
३. धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा........अन्तरधायामि। अन्तरहितं च मं न जानन्ति 'को नु खो अयं अन्तरहितो देवो वा मनुस्सो वा'ति? (दी० नि० २.१७२)
४. स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात्॥ (योग० ३.५१)
५. सं० नि० १.१.१६१. मारधीतुसुत्तं

पालि ग्रंथों में उल्लेख आता है कि 'मार' ने अनेक अवसरों पर भिन्न भिन्न रूप धारण कर बहुधा एकांत स्थानों पर भिक्षुणियों को आकर्षित करने की कुचेष्टा की थी[१]।

● 'स्थिर समाधि' के विकास हेतु 'अभ्यास' का महत्त्व –

पांच प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओं को समझाने के उपरांत योगसूत्र में उनको 'अभ्यास' और 'वैराग्य' द्वारा नियंत्रित करने के बारे में कहा गया है[२]। 'अभ्यास' से आशय चित्त की स्थिरता (स्थिति)[३] के लिए किये जाने वाले प्रयासों से है। लंबे समय तक गंभीर अवधानता के साथ, बिना क्रम-भंग किये, अभ्यास जारी रखने से चित्त पूरी तरह स्थिर हो जाता है[४]।

इस संदर्भ में 'स्थिति' (पालि – 'ठिति') शब्द का प्रयोग बुद्ध की देशना में उल्लेखप्राप्त चार प्रकार की समाधियों में से 'ठितिभागियो समाधि' (स्थिर समाधि) की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। अन्य तीन प्रकार की समाधियां हैं –

१. 'हानभागियो' (अर्थात, क्षीण होती समाधि);
२. 'विसेसभागियो' (अर्थात, विशिष्ट समाधि जो अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त करने में सहायक होती है); तथा
३. 'निब्बेधभागियो' (अर्थात, बींधने वाली समाधि)[५]।

'स्थिर-समाधि' प्राप्त करने हेतु साधक को लगातार, बिना किसी व्यवधान के, अभ्यास करना होता है। साधक की गंभीरता के अनुसार उसको क्रमवार निम्न समाधियां प्राप्त होती हैं –

---

१. जैसे – आळविका, सोमा, गोतमी, विजया, उप्पलवण्णा (सं० नि०। भिक्खुनीसंयुत्तं।)
२. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥ (योग० १.१२)
३. तत्र स्थितौ यत्नो अभ्यासः॥ (योग० १.१३)
४. स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः॥ (योग० १.१४)
५. पटि० म० ३०

❶ 'खणिक समाधि' (अर्थात, 'क्षणिक' याने क्षण क्षण रहने वाली समाधि)

❷ 'उपचार समाधि' (अर्थात, समीप ले जानी वाली समाधि – किसके समीप? अगली, याने अप्पना के समीप)

❸ 'अप्पना समाधि' (अर्थात, अपने आप में अर्पित याने समाहित कर लेने वाली समाधि)

पालि ग्रंथों में समाधि में प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए 'पतिट्ठितो' (संस्कृत - 'प्रतिष्ठित:') शब्द का प्रयोग प्रचुर मात्रा में पाया जाता है[1]।

● **मानसिक प्रक्रियाओं के नियंत्रण में 'वैराग्य' का महत्त्व –**

योगसूत्र के अनुसार मानसिक प्रक्रियाओं को नियंत्रण में रखने के लिए 'वैराग्य' एक महत्त्वपूर्ण सहायक घटक है[2]।

बुद्ध के अनुसार समस्त आध्यात्मिक नियमों में 'विराग' का स्थान सर्वोपरि है[3]।

● **आह्लाद की अवस्थाएं: 'समाधि' एवं 'ज्ञान' –**

पतंजलि दो प्रकार की समाधियों का उल्लेख करते हैं – १. 'सम्प्रज्ञात' (अर्थात, अंत:प्रज्ञा वाली), और २. अन्य।

'सम्प्रज्ञात समाधि' के सहवर्ती तत्त्व हैं – 'वितर्क,' 'विचार', 'आनन्द' एवं 'अस्मिता' (अर्थात, किसी विषय के साथ मन का प्रारंभिक संपर्क याने प्रतिघात या टकराव, उस विषय में विचरण याने लोटपलोट लगना, आह्लाद की अनुभूति तथा अस्मिता का भाव)[4]।

---

१. चतूसु सतिपट्ठानेसु सुपतिट्ठितचित्तो०। (दी० नि० २.१६६)

२. योग० (१.१२)

३. यावता, भिक्खवे, धम्मा सङ्खता वा असङ्खता वा, विरागो तेसं अग्गमक्खायति। (इतिवु० ९०)

४. वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात्सम्प्रज्ञात:॥ (योग० १.१७)

'अन्य' समाधि के बारे में पतंजलि का मत है कि 'संज्ञान' का अवसान अनुभव करने के लिये प्रयास की आवश्यकता होती है और इसमें अवशेष के रूप में अवचेतन में संस्कार पड़े रहते हैं[१]।

सम्यकसंबुद्ध बनने से पहले बुद्ध ने उस समय भारत में प्रचलित आठों ध्यान ('झान')[२] सीख कर उनका अभ्यास कर लिया था। इनमें से प्रथम चार ध्यान 'रूपज्झान' कहलाते थे जो पूर्ण समाधि ('अप्पना समाधि') की अवस्था में पहुँच कर ही प्राप्त होते थे। समाधि की इन अवस्थाओं में पांचों प्रकार की ऐंद्रिय क्रियाओं तथा पांचों प्रकार के अवरोधनों ('नीवरणों')[३] का अल्प समय के लिए पूरी तरह से निलंबन हो जाता है। फिर भी चेतना की स्थिति पूर्णतः सजग और प्रांजल रहती है।

'प्रथम ध्यान' के सहवर्ती तत्त्व (घटक) हैं– 'वितक्क', 'विचार,' 'पीति', 'सुख' और 'चित्तेकग्गता' (अर्थात, किसी विषय के साथ मन का प्रारंभिक संपर्क अथवा प्रतिघात, उस विषय में विचरण करना, प्रीति, सुख तथा चित्त की एकाग्रता)[४]। 'द्वितीय ध्यान' में पाये जाते हैं– 'पीति', 'सुख' एवं 'चित्तेकग्गता'। इसमें प्रथम ध्यान के पहले दो घटक ('वितक्क' एवं 'विचार') समाप्त हो जाते हैं। 'तृतीय ध्यान' में कायम रहते हैं– 'सुख' और 'चित्तेकग्गता' (अर्थात, सुख और चित्त की एकाग्रता)। इसमें 'पीति' (अर्थात, प्रीति) का अवसान हो जाता है। 'चतुर्थ ध्यान' के साथ रहती है मात्र 'चित्तेकग्गता' (अर्थात, चित्त की एकाग्रता)। इसमें 'सुख' की प्रतीति जाती रहती है।

अगले चार ध्यान 'अरूपज्झान' कहलाते हैं जिनके माध्यम से कोई साधक इन क्षेत्रों में जा सकता है– अनंत आकाश ('आकासानञ्चायतनसमापत्ति'), अनंत चेतना ('विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्ति'), शून्यता ('आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्ति')

---

१. विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः॥ (योग० १.१८)

२. संस्कृत – 'ध्यान'

३. कामच्छन्द, व्यापाद, थिनमिद्ध, उद्धच्चकुक्कुच्च, विचिकिच्छा

४. पठमं झानं पटिलाभत्थाय वितक्को च विचारो च पीति च सुखञ्च चित्तेकग्गता च........। (पटि० म० २११)

और जहां संज्ञा के विद्यमान होने-अथवा-न-होने का भान न हो पाता हो ('नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्ति')।

ध्यान के इन दोनों प्रकार के वर्गों में मुख्य अंतर यह है कि प्रथम चार ध्यानों के दौरान साधक नाम और रूप के क्षेत्र में बना रहता है जबकि अंतिम चार में केवल मन ही सक्रिय रहता है। ये आठों प्रकार के ध्यान करके भी बुद्ध ने जाना कि इनसे अंतर्मन की गहराई में टिके हुए चित्तमल ('अनुसय किलेस') पूर्णतया समाप्त नहीं हो जाते हैं। इसलिए उन्होंने स्वयं अपनी समझ से ध्यान-साधना करने का निश्चय कर एक ऐसा मार्ग खोज निकाला जिससे उन्हें 'सञ्ञावेदयितनिरोध' (अर्थात, संज्ञा-और-वेदना का निरोध), अथवा 'निरोधसमापत्ति', अथवा 'निरोध' की अवस्था प्राप्त हुई। यह एक ऐसी अवस्था है जिसमें चित्त भी काम करना बंद कर देता है और 'निब्बान' (निर्वाण) की अवस्था का साक्षात्कार करना संभव हो जाता है। इस खोज के उपरांत ही बुद्ध सम्यकसंबुद्ध कहलाये, जबकि इससे पूर्व वे केवल 'बोधिसत्त' (बोधिसत्त्व) ही थे, अर्थात बुद्ध बनने के लिए यत्नशील थे।

'निब्बान' (निर्वाण) का साक्षात्कार ही 'लोकुत्तर' (लोकोत्तर) अवस्था का साक्षात्कार है। 'नाम' और 'रूप' के क्षेत्र में बने रहना 'लोक' में बने रहना है। 'लोक' उसे कहते हैं जो नष्ट होता रहता है ('लुज्जति खो लोकोति')। 'नाम' और 'रूप' में से एक भी शेष रहे तो भी 'लोक' ही होता है। 'परलोक' भी 'लोक' ही है[१]। इन सभी से परे हो तो 'लोकुत्तर' कहलाता है। इस अवस्था में कुछ नष्ट नहीं होता।

बुद्ध की गवेषणा थी कि निर्वाण की अवस्था प्राप्त करने के लिए आठों प्रकार के ध्यानों का अभ्यास करना आवश्यक नहीं है। इसके लिए केवल प्रथम चार प्रकार के ध्यान पर्याप्त हैं बशर्ते कि इनमें थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया जाय। बुद्ध के अनुसार प्रथम ध्यान में ही 'विवेक' (वैराग्य) का भाव डाल देने से द्वितीय ध्यान में 'समाधि' (गहरी एकाग्रता) की स्थिति आ जाती है। इससे तृतीय ध्यान में 'सति-सम्पजञ्ञ' (जागरूकता और

---

१. मनुस्सलोकं ठपेत्वा सब्बो परलोको। (चूळनि० ८६)

नाम-रूप के प्रपंच की निरंतरता एवं समग्रता से अनुभूति) का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इस ध्यान की चरम अवस्था में 'सति' और 'सम्पजञ्ञ' इतने पुष्ट और प्रखर हो जाते हैं कि क्षण-भर के लिए भी साधक इनसे रिक्त नहीं रहता है[1]। यह अवस्था प्राप्त कर लेने के पश्चात चौथे ध्यान में प्रवेश करने पर साधक को 'ज्ञान-समापत्ति' (पूर्ण एकाग्रता) के अनुभव के साथ-साथ 'फल-समापत्ति' (मुक्ति) भी प्राप्त हो जाती है। यह बुद्ध की ध्यान-विधि की एक विशेषता है जिसकी अपने एक अति महत्त्वपूर्ण सुत्त[2] में उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

पतंजलि के अनुसार 'सम्प्रज्ञात समाधि' (अर्थात, प्रज्ञापूर्ण समाधि) के सहवर्ती घटक हैं – 'वितर्क', 'विचार', 'आनन्द' तथा 'अस्मिता'। क्रमवार इनका अर्थ है – किसी विषय पर मन का प्रारंभिक संपर्क अथवा प्रतिघात, उस विषय में विचरण, आह्लाद की स्थिति अथवा परम आनंद और अस्मिता का भाव। यह कथन बुद्ध की शिक्षा से बहुत-कुछ मेल खाता है।

पतंजलि के अनुसार 'अन्य'[3] (अर्थात, दूसरी) समाधि का लक्ष्य है संज्ञान का 'विराम' अथवा 'निरोध' और उस अवस्था में अवशेष के रूप में अवचेतन में पड़े संस्कारों का यत्किंचित संग्रह। यह भी बुद्ध की शिक्षा के अनुरूप ही है जैसा कि यह 'सोतापन्न' (अर्थात, मुक्ति के स्रोत में पड़ने) की स्थिति का द्योतक प्रतीत होता है जहां भी संज्ञान और वेदनाएं समाप्त हो जाते हैं और अवचेतन में उच्च स्तर के कुछ चेतनागत संस्कार बचे रहते हैं जो भी अर्हत अवस्था प्राप्त होने से पहले-पहले समाप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि पतंजलि की शिक्षा का बुद्ध की शिक्षा से बहुत कुछ सामंजस्य है पर उत्तरवर्ती काल में योगसूत्र पर भाष्य तथा

---

१. यतो च भिक्खु आतापी, सम्पजञ्ञं न रिञ्चति। (सं० नि० २.२.२५१)

२. यं बुद्धसेट्ठो परिवण्णयी सुचिं, समाधिमानन्तरिकञ्ञमाहु। समाधिना तेन समो न विज्जति, इदम्पि धम्मे रतनं पणीतं॥ (खु० पा० ६.५)

३. पतंजलि के भाष्यकारों द्वारा जो 'असम्प्रज्ञात' कहा गया है, उसे 'सम्प्रज्ञानातीत' कहना अधिक उपयुक्त होता क्योंकि तब इसकी विशेपता के अनुरूप यह नाम होता।

टीका लिखने वालों की अयुक्तियुक्त व्याख्याओं से यह महत्त्वपूर्ण पहलू दृष्टि से ओझल हो गया।

● मन को एकाग्र करने हेतु उपयुक्त आलंवन का चुनाव –

मन को एकाग्र करने के लिए कुछ उपयुक्त आलंवन सुझा कर योगसूत्र में यह विधान भी किया गया है कि साधक अपनी रुचि के अनुसार भी कोई आलंवन चुन सकता है[1]।

बुद्ध की शिक्षा के अनुसार भी ऐहिक एकाग्रता के लिए निर्धारित चालीस आलंवनों[2] में से कोई एक आलंवन साधक अपने स्वभाव के अनुरूप चुन सकता है। उनकी शिक्षा में छः प्रकार के स्वभाव संकेत-प्राप्त हैं – राग, द्वेष, मोह, श्रद्धा, बुद्धि एवं वितर्क[3]।

● चित्त-विक्षेप –

योगसूत्र के अनुसार चित्त-विक्षेप हैं –

व्याधि, उदासीनता, संशय, प्रमाद, आलस्य, कामुकता, भ्रांतिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व एवं अस्थिरता। ये चित्त की एकाग्रता लाने में बाधक होते हैं[4]।

इनमें से अनेक बुद्ध की शिक्षा से मेल खाते हैं। 'व्याधि' के बारे में बुद्ध ने पृथक से विस्तारपूर्वक चर्चा की है।

बुद्ध ने 'व्याधि' को 'दुक्ख' (दुःख) के रूप में और इसके विपरीत 'अ-व्याधि' को 'सुख' के समान अनुभव करने के लिए कहा है। 'व्याधि' को भय के सदृश और 'अ-व्याधि' को 'खेम' (क्षेम, सुरक्षा) के समान अनुभव

१. यथाभिमतध्यानाद्वा। (योग० १.३९)
२. तत्रिमानि चत्तालीस कम्मट्ठानानि: दस कसिणा, दस असुभा, दस अनुस्सतियो, चत्तारो ब्रह्मविहारा, चत्तारो आरुप्पा, एका सञ्ञा, एकं ववत्थानन्ति। (विसुद्धि० १.४७)
३. रागचरिया, दोसचरिया, मोहचरिया, सद्धाचरिया, बुद्धिचरिया, वितक्कचरिया। (विसुद्धि० १.४३)
४. व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः॥ (योग० १.३०)

करने के लिए कहा है। 'व्याधि' को 'सङ्खार' (संस्कृत, अर्थात निर्मित पुंज) और 'अ-व्याधि' को 'निब्बान' (अर्थात, निर्वाण) के समान अनुभव करने के लिए कहा है[१]।

पतंजलि द्वारा वतलाये गये शेप चित्तविक्षेपों को वुद्ध ने निम्न प्रकार से प्रज्ञप्त किया है:– 'स्त्यान' (उदासीनता) को 'थिन'; 'संशय' को 'विचिकिच्छा'; 'प्रमाद' (गफलत) को 'कोसज्ज'; 'आलस्य' को 'मिद्ध'; 'अविरति' (कामुकता) को 'राग'; 'भ्रान्तिदर्शन' को 'अविज्जा'; 'अलब्धभूमिकत्व' (आधारहीनता) को 'अतीतानुधावन', 'अनागतपटिकङ्खन चित्त'; और 'अनवस्थितत्व' (अस्थिरता) को 'कुक्कुच्च'[२]।

- **चित्तविक्षेपों के सहवर्ती तत्त्व –**

योगसूत्र में उल्लेख किया गया है कि चित्तविक्षेपों के सहवर्ती तत्त्व ('विक्षेपसहभुव:')[३] हैं: पीड़ा ('दु:ख'), मानसिक अशांति ('दौर्मनस्य'), शारीरिक उत्तेजना ('अङ्गमेजयत्व'), भीतर आता सांस ('श्वास') एवं वाहर जाता सांस ('प्रश्वास')। इनको दूर करने के लिए किसी एक तत्त्व पर स्थायित्व के लिए अभ्यास करना आवश्यक है[४]।

---

१. व्याधि दुक्खं, अव्याधि सुखं ति अभिञ्ञेय्यं। व्याधि भयं, अव्याधि खेमन्ति अभिञ्ञेय्यं। व्याधि सङ्खारा, अव्याधि निब्बानन्ति अभिञ्ञेय्यं। (पटि० म० १०)

२. अतीतानुधावनं चित्तं विक्खेपानुपतितं– समाधिस्स परिपन्थो। अनागतपटिकङ्खनं चित्तं विकम्पितं– समाधिस्स परिपन्थो। लीनं चित्त कोसज्जानुपतितं– समाधिस्स परिपन्थो। अभिनतं चित्तं रागानुपतितं– समाधिस्स परिपन्थो। (पटि० म० १५६) और, थिनमिद्धं नीवरणं........कुक्कुच्चं नीवरणं, विचिकिच्छा नीवरणं, अविज्जा नीवरणं.......। (पटि० म० १५३)

३. दु:खदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुव:॥ (योग० १.३१)

४. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यास:॥ (योग० १.३२)

बुद्ध द्वारा सिखलायी गयी ध्यानविधि 'विपश्यना' (पालि – 'विपस्सना') के सतत अभ्यास से साधक अनुभूति के स्तर पर समझ लेता है कि प्रत्येक मानसिक व्याकुलता के साथ ही इसके परिणामस्वरूप ये लक्षण प्रकट होने लगते हैं– किसी अप्रिय संवेदना के रूप में पीड़ा की अनुभूति, मानसिक अशांति, शारीरिक उत्तेजना तथा सामान्य श्वास-प्रश्वास में परिवर्तन। शारीरिक उत्तेजना और मानसिक अशांति के संबंध में बुद्ध की आदेशना है– "हे भिक्षुओ! आनापानसति का लगातार अभ्यास करने से शरीर और मन का परिचालन नहीं होता है।"[१]

● अनात्मभाव का सिद्धांत–

पतंजलि का कथन है कि विशेष प्रकार से (अर्थात, द्रष्टाभाव से) देखने वाले ('विशेषदर्शिन:') के लिए 'आत्मभाव' समाप्त हो जाता है[२]।

पतंजलि के इस सूत्र में नि:संदेह 'विपस्सना' की झलक मिलती है जो बुद्ध द्वारा सिखलायी गई अंतर्दृष्टि वाली ध्यानविधि है। 'विपस्सना' (संस्कृत – 'विदर्शना') से तात्पर्य है "वस्तुओं को विशेष प्रकार से देखना।" (अर्थात, सही प्रकार से देखना – जैसे बाहर बाहर से प्रतीत होती हों वैसे नहीं, बल्कि परमार्थ सत्य के रूप में जैसी हों वैसे देखना)।

'विपस्सना' (अथवा 'विदर्शना') के आरंभ में उपसर्ग 'वि' से आशय है 'विशेष'[३]। अत: 'विशेषदर्शी' से तात्पर्य है 'विपस्सना करने वाला जिसने वस्तुओं को विशेष प्रकार से देखना सीख लिया हो'।

---

१. "आनापानस्सतिसमाधिस्स, भिक्खवे, भावितत्ता बहुलीकतत्ता नेव कायस्स इञ्जितत्तं वा होति फन्दितत्तं वा, न चित्तस्स इञ्जितत्तं वा होति फन्दितत्तं वा।" (सं० नि० ३.२.९८३)

२. विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्ति:॥ (योग० ४.२५)

३. पञ्ञत्तिं ठपेत्वा विसेसेन पस्सतीति विपस्सना। (नेत्तिपकरण अट्ठकथा) (बर्मी संस्करण – पृष्ठ १३३), अर्थात विपश्यना वह होती है जब (परमार्थ सत्य के साक्षात्कार हेतु) प्रकट सत्य को टुकड़े-टुकड़े करके विशेष प्रकार से देखते, यानि सच्चाई को अनुभूति पर उतारते हैं।

जैसे-जैसे साधक 'विपस्सना' का अभ्यास करने लगता है, वैसे-वैसे उसे अनुभूति के स्तर पर चित्त-और-शरीर के प्रपंच का उत्पाद-व्यय मालूम होने लगता है। और जब वह इस ध्यानविधि में पुष्ट होने लगता है तब तो उसे हर स्थिति में हर समय यह अनुभव होने लगता है। इस अवस्था पर पहुँच कर साधक यह जानने लगता है कि उसका शरीर-स्कंध न तो 'मैं' है, न 'मेरा' और यह किसी भी आत्मतत्त्व अथवा सार से शून्य है। इसी प्रकार चित्त-स्कंध भी न तो 'मैं' है और न 'मेरा', और यह भी किसी आत्मतत्त्व अथवा सार से शून्य है[१]। इस प्रकार विपस्सना के अभ्यास से शरीर-स्कंध में (अथवा बाह्य जगत में भी) कोई आत्मतत्त्व होने की दृढ़मूल धारणा धीरे-धीरे समाप्त होने लगती है।

बुद्ध की अन्य अनेक शिक्षाएं थोड़े-बहुत अंशों में विभिन्न भारतीय दार्शनिक मान्यताओं एवं (तथाकथित) धर्मों में पायी जाती हैं, किंतु 'अनत्ता' (अनात्मभाव) को स्पष्टतया और मुख्य रूप से केवल बुद्ध ने ही प्रज्ञप्त किया है[२]। इसी कारण बुद्ध को 'अनत्तावादी' (अनात्म-भाव के शास्ता) के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार पतंजलि का यह कथन कि विशेष प्रकार से देखने वाले ('विशेषदर्शिनः') का आत्मभाव समाप्त हो जाता है, विपस्सना ध्यानविधि की भूरि-भूरि प्रशंसा ही है कि यह परिणाम लाने वाली ध्यान-साधना है।

● स्मृति-परिशुद्धि और समता में प्रवेश –

पतंजलि ने अपने ग्रंथ के दो सूत्रों[३] में इस विषय की चर्चा की है।

---

१. 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता'ति। (सं० नि० १.२.७०)

२. 'चाहे सम्यकसंबुद्ध उत्पन्न हों अथवा न हों, अनित्यता और दुःख के लक्षण तो प्रज्ञप्त रहते हैं पर जब तक सम्यकसंबुद्ध का प्रादुर्भाव नहीं होता है तब तक अनत्ता का लक्षण प्रज्ञप्त नहीं होता है।' (विभ० अट्ठ० १५४)

३. स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का॥ एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता॥ (योग० १.४३-४४)

इनके अनुसार जब स्मृति, अर्थात जागरूकता, परिशुद्ध हो जाती है तब निर्वितर्का समाधि होती है। इसमें आलंबन का अपना रूप शून्य जैसा हो जाता है और उसका केवल आशयमात्र ही भासता (प्रतीत होता) है। सवितर्का तथा निर्वितर्का समाधियों के वर्णन के आधार पर ही सविचारा तथा निर्विचारा समाधियों की व्याख्या भी हो गयी है।

इन सूत्रों का निकट से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इनमें बुद्ध की शिक्षा झलकती है। बुद्ध के अनुसार सभी 'वितक्क' और 'विचार' व्यक्ति के 'अहं' (अर्थात, 'मैं', 'मुझे', 'मेरा', आदि मिथ्या धारणाओं) के कारण होते हैं। पतंजलि ने इसे 'स्व-रूप', अर्थात स्वत्व, की संज्ञा दी है। दूसरे शब्दों में इसे 'आत्मभाव' (बुद्ध की शिक्षा के अनुसार 'अत्तभावो') कह सकते हैं। जैसे ही यह 'आत्म-भाव' पिघल जाता है, 'वितक्क' और 'विचार' से रहित समता की अवस्थाएं प्राप्त हो जाती हैं। इन अवस्थाओं में पहुँचने पर जब कोई साधक 'मैं', 'मुझे', 'मेरा' शब्दों का प्रयोग करता है तब वह समझता है कि यह सब लोक-व्यवहार के लिए है ('अर्थमात्रनिर्भासा'), अन्यथा ये अर्थहीन हैं[1]।

बुद्ध के सुविख्यात 'महासतिपट्ठानसुत्त'[2] में चौथे ध्यान के अंतर्गत 'उपेक्खा-सति-पारिसुद्धि' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है 'उपेक्षा (समता) और स्मृति (जागरूकता) की परिशुद्धि के साथ'। पतंजलि ने भी बुद्ध की शिक्षा के अनुसार समता की अवस्था प्राप्त करने के लिए 'स्मृति की परिशुद्धता' के महत्त्व को स्वीकारा है। समता की अवस्था में 'वितर्क' (आलंबन पर चित्त का प्रारंभिक संपर्क अथवा प्रतिघात) और 'विचार' (आलंबन में विचरण) - ये दोनों ही नहीं होते हैं अथवा, अन्य शब्दों में,

---

१. यह अर्हत पर ही लागू होता है जो लौकिक व्यवहार हेतु ही ऐसी शब्दावलि काम में लेते हैं। देखिए- यो होति भिक्खु अरहं कतावी.......अहं वदामीतिपि सो वदेय्य। ममं वदन्तीतिपि सो वदेय्य, लोके समञ्ञं कुसलो विदित्वा, वोहारमत्तेन सो वोहरेय्य। (सं० नि० १.१.२५)

२. ".......अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।" (दी० नि० २.४०२)

'अहंभाव' से सर्वथा मुक्त है। बुद्ध की घोषणा है कि उनके द्वारा उपदिष्ट चार स्मृति-प्रस्थानों ('सतिपट्ठान') के सतत अभ्यास से साधक अपने 'अहंभाव' से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

चार स्मृति-प्रस्थानों में 'सम्पजञ्ञ' या सम्यकरूपेण ज्ञान होना एक आवश्यक घटक है जिसका आशय है नाम-रूप के प्रपंच की अनित्यता का सम्यक प्रकार से सतत बोध होना। 'सम्पजञ्ञ' का प्रयोजन है 'अनिच्चता' (अनित्यता) को अनुभव करना। अनित्यता के अनुभव को अपनापे की धारणा से मुक्त करने के लिए पुष्ट करना होता है। जब यह धारणा समाप्त हो जाती है तब इसी जीवन में 'निब्बान' (निर्वाण) का साक्षात्कार हो जाता है[१]।

● द्रष्टा, दर्शन और दृश्य के बारे में भ्रांति –

योगसूत्र में 'द्रष्टा', 'दर्शन' और 'दृश्य' के बारे में प्रचलित भ्रांति को दूर करने का प्रयास किया गया है। यह घोषणा करते हुए कि विवेकी के लिए इस संसार में केवल दुःख व्याप्त है[२], पतंजलि ने परामर्श दिया है कि भावी दुःखों से बचने के लिए व्यक्ति प्रयत्न करे[३]। उन्होंने स्पष्ट किया है कि 'द्रष्टा' और 'दर्शन'[४] का 'संयोग' इस दुःख का मूल कारण है। अंततोगत्वा, द्रष्टा स्वयं को मात्र शुद्ध चेतना ('दृशि') के समान अभिव्यक्त करता है, किंतु शुद्ध होने पर भी (शुद्धोऽपि) उसके कारण (प्रत्यय) का सूक्ष्म आत्म-विश्लेषण (अनुपश्यः)[५] शेष रह जाता है। दृश्य की प्रतीति इसीलिए होती है[६]। संयोग का कारण (जिसे दुःख का कारण बतलाया गया है)

---

१. अनिच्चसञ्ञा भावेतब्बा अस्मिमानसमुग्घाताय। अनिच्चसञ्ञिनो हि, मेघिय, अनत्तसञ्ञा सण्ठाति, अनत्तसञ्ञी अस्मिमानसमुग्घातं पापुणाति दिट्ठेव धम्मे निब्बानं। (उदा० २१)

२. दुःखमेव सर्वं विवेकिनः॥ (योग० २.१५)

३. हेयं दुःखमनागतम्॥ (योग० २.१६)

४. द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः॥ (योग० २.१७)

५. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः॥ (योग० २.२०)

६. तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा॥ (योग० २.२१)

अज्ञान (अविद्या) है[1]। जब अज्ञान मिट जाता है, तब यह संयोग भी समाप्त हो जाता है; यही है पृथक हो जाना (हानं)। इस पृथक हो जाने में ही शुद्ध चेतना का पृथक होना सन्निहित है ('तद्दृशेः कैवल्यम्')[2] इस पार्थक्य को लाने वाला साधन है– स्थिर, विवेकपूर्ण ज्ञान ('विवेकख्यातिः')[3]

पतंजलि के ये सब कथन बुद्ध की शिक्षा के अनुरूप हैं जिसका आधार है– 'विपस्सना' ध्यानविधि। 'विपस्सना' आत्मनिरीक्षण की विधि है जिसमें इस बात की खोज की जाती है कि आखिर 'मैं' कौन हूं। इस सच्चाई का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए हमें अपना ध्यान ऊपरी-ऊपरी, भासमान, स्थूल सच्चाई से आरंभ करके सूक्ष्मतर सच्चाइयों और अंततोगत्वा चित्त-और-शरीर की सूक्ष्मतम सच्चाई पर केंद्रित करना होता है। इन सब अनुभूतियों के उपरांत साधक आगे बढ़ता है और चित्त-एवं-शरीर से परे जो परम सत्य है उसका साक्षात्कार कर लेता है।

आत्मान्वेषण की इस प्रक्रिया में साधक यह स्पष्टतः जान लेता है कि चित्त-और-शरीर स्कंध के भीतर न कोई 'मैं' है, न 'मेरा'। पूरे प्रपंच में 'तरंगों' के सिवाय कुछ नहीं है और ये भी क्षण भर से अधिक टिकी नहीं रहती हैं। तब यह भ्रांति कि चित्त-एवं-शरीर के प्रपंच में कोई द्रष्टा अथवा दृश्य है दूर हो जाती है। आत्मान्वेषण की अंतरिम अवस्था में साधक को शुद्ध चेतना का बोध ठोस यथार्थ के समान होता है। जब पतंजलि योगसूत्र में 'द्रष्टा दृशिमात्रः' की बात करते हैं तब लगता है कि वे उस अवस्था को इंगित कर रहे हैं जहां द्रष्टा कहलाने जैसा कोई तत्त्व नहीं होता और केवल शुद्ध चेतना ही व्याप्त रहती है।

'विपस्सना' ध्यानविधि में यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि साधक की जागरूकता शुद्ध चेतना ('विञ्ञाण') (संस्कृत-विज्ञान) के क्षेत्र में सिमट जाती है। किंतु तब भी उत्सुकता बनी रहती है कि आखिर इस 'शुद्ध

---

१. तस्य हेतुरविद्या॥ (योग० २.२४)
२. तदभावात्संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम्॥ (योग० २.२५)
३. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः॥ (योग० २.२६)

चेतना' ('विञ्ञाण') का भी क्या कारण ('प्रत्यय') हो सकता है? इसकी तह तक पहुंचने के लिए इस प्रपंच को भी क्षण प्रति क्षण अनुभूति पर उतारते चले जाना (अर्थात, इसकी अनुपश्यना करना) आवश्यक हो जाता है। ऐसा करने पर वह भिन्न-भिन्न प्रकार की चेतना अनुभव करने लगता है जिनका संबंध अपने-अपने इंद्रियद्वारों से होता है। इस प्रकार 'शुद्ध चेतना' का बोध उस चेतना के समान होता है जिसका स्पष्ट संबंध आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा या मन से होता है। अपने अनुभव से साधक समझने लगता है कि जैसे जैसे किसी इंद्रिय-द्वार का अपने विषय से स्पर्श ('फस्स') या 'संयोग' होता है, ये भिन्न-भिन्न प्रकार की चेतनाएं अस्तित्व में आने लगती हैं। इस स्थिति का और गहराई से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इंद्रिय-द्वार और उनके विषय भी केवल सूक्ष्म तरंगें ही हैं जो उत्पन्न होती और समाप्त होती रहती हैं। इस प्रकार सारे शरीर-स्कंध, और ऐसे ही चित्त-स्कंध, की अनुभूति सूक्ष्म तरंगों के रूप में ही होती है। इस अनुभूति के होने पर भीतर आत्मा (अर्थात, सदा बने रहने वाले किसी तत्त्व) की धारणा सर्वथा जाती रहती है।

जब तक इस प्रकार की अनुभूति नहीं होती तब तक व्यक्ति चित्त-और-शरीर के प्रपंच की सच्चाई से अनभिज्ञ रहता है और जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में प्रतिक्रिया करते हुए संस्कार ('सङ्खार') बना बना कर अपने लिए दुःख का ही सृजन करता रहता है। पतंजलि ने भी बुद्ध की समीक्षा के अनुरूप ठीक ही कहा है कि शुद्ध चेतना ('दृशेः कैवल्यं') का अलगाव तभी होता है जब द्रष्टा और दृश्य का संयोग ('द्रष्टृदृश्ययोः संयोगः') – जो कि दुःख का कारण है – अनुपश्यना (अर्थात, क्षण प्रति क्षण अनुभूति पर उतारते चले जाने) से समाप्त हो जाता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जो प्रक्रिया अपनायी जाती है उसे पतंजलि ने 'विवेकख्याति' (अर्थात, विवेक पर आधारित ज्ञान) कहा है। यह 'विपस्सना' का ही दूसरा नाम प्रतीत होता है, जिसका विग्रह 'विवेकेन पस्सतीति' कर सकते हैं (अर्थात, वह विधि जो साधक को विवेक के साथ वस्तुओं को समझने की सामर्थ्य प्रदान करती है)।

विवेक से तात्पर्य किसी धर्म का विचयन, अथवा टुकड़े कर करके, देखने से है। बुद्ध की शिक्षा के अनुसार यह बोधि के सात अंगों में से एक है। वहां इसे 'धम्म-विचय' की संज्ञा दी गई है[१]। जैसे चक्रवर्ती राजा के सात रत्नों में महाकाय हस्तिरत्न होता है, वैसे ही धम्मकाय में अपनी महानता के कारण इसे चक्रवर्ती राजा के हस्तिरत्न के सदृश माना गया है[२]।

जब साधक 'विवेकख्याति' या 'विपस्सना' में दक्ष हो जाता है तब वह अनुभूति के स्तर पर समझने लगता है कि किस प्रकार चेतना ('विञ्ञाण') विभिन्न इंद्रियों के माध्यम से होने वाले बोध के संग-संग जागती और समाप्त होती रहती है। ऐसी अवस्था में साधक का 'देखना' मात्र 'देखने' तक ही सीमित रहता है, 'सुनना' मात्र 'सुनने' तक, 'सूंघना' मात्र 'सूंघने' तक, 'स्वाद' मात्र 'स्वाद' तक, 'स्पर्श' मात्र 'स्पर्श' तक और 'संज्ञान' केवल 'संज्ञान' तक[३]। और गहरे प्रत्यवेक्षण से यह बोध भी सूक्ष्म तरंगों की अनुभूति में पलट जाता है – हर इंद्रिय-द्वार पर, और अन्यत्र भी सब जगह।

'विवेकख्याति' और 'विपस्सना' का प्रयोजन एक ही है, अर्थात साधक इतना सक्षम हो जाय कि वह भासमान सत्य का विघटन करते-करते अंतिम सत्य को अनुभूति के स्तर पर जान जाय। बुद्ध की प्रणाली 'विभज्जवाद' के नाम से प्रसिद्ध है, अर्थात ऐसी प्रणाली जिसे अपनाने से तथ्यों का विभाजन-विश्लेषण करते-करते परमार्थ सत्य प्रकट हो जाय[४]।

---

१. दी० नि० २.३८५

२. "चक्कवत्तिनो च रतनेसु महाकायूपपन्नं अच्चुग्गतं विपुलं महन्तं हत्थिरतनं, इदम्पि धम्मविचयसम्बोज्झङ्गरतनं महन्तं धम्मकायूपपन्नं अच्चुग्गतं विपुलं महन्तन्ति हत्थिरतनसदिसं होति।..."(सं० नि० अट्ठ० ३.५.२२३)

३. इस बारे में बुद्धवाणी है – "दिट्ठे दिट्ठमत्तं भविस्सति, सुते सुतमत्तं भविस्सति, मुते मुतमत्तं भविस्सति, विञ्ञाते विञ्ञातमत्तं भविस्सति।" (उदा० १०)

४. विभज्जवादो खो अहमेत्थ, माणव......। (म० नि० २.४६३)

● 'धर्ममेघ' की अवधारणा –

योगसूत्र में 'धर्ममेघ' नाम की समाधि का उल्लेख हुआ है। इस समाधि की अवस्था में वह साधक पहुँचता है जो ध्यान की उच्चतर अवस्थाओं में कठोर श्रम करता हुआ भी चित्त-और-शरीर के क्षेत्र (अर्थात, इंद्रिय-क्षेत्र में) हर प्रकार से अपने विवेकपूर्ण ज्ञान का उपयोग करता रहता हो[1]। यहां से कर्म[2] और बाधाओं की निवृत्ति प्रारंभ होती है। तब आवरणजन्य सभी मलों के नष्ट हो जाने से ज्ञान अनंत हो जाता है और यदि कुछ जानने योग्य शेष रहता है तो वह नगण्य ही होता है[3]।

बुद्ध की शिक्षा में किसी समाधि को 'धम्ममेघ' (संस्कृत – 'धर्ममेघ') नहीं कहा गया है। इस शब्द का प्रयोग मलिन प्रवृत्तियों ('आस्रवों') की निवृत्ति के संदर्भ में होना पाया जाता है:

> "जब 'धम्ममेघ' की वर्षा हो रही हो, तब सभी जीव अपनी-अपनी मलिन प्रवृत्तियों से मुक्त ('अनासवा') हो जायं। यहां उपस्थित लोगों में से जो कोई (अपनी परिपुष्ट पारमिताओं के कारण) इस जीवन के अंतिम चरण में से गुजर रहे हों वे कम-से-कम स्रोतापन्न तो हो जायं!"[4]

कोई व्यक्ति 'सोतापन्न' तभी होता है जब उसके ये तीन बंधन कट जाते हैं: अपने भीतर किसी सत्ता के अस्तित्व में विश्वास, विचिकित्सा (संदेह) तथा शील-व्रतों के प्रति गहरा चिपकाव। मुक्ति के स्रोत में पड़ जाने के कारण उसका जन्म किसी अधोलोक में नहीं हो सकता, वह धर्म में दृढ़ता से स्थापित हो जाता है और (अधिक-से-अधिक सात जन्म लेकर) निश्चित रूप से अर्हत्व-लाभ कर ही लेता है, और कोई उपाधि शेष रह जाने पर

---

१. प्रसङ्ख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः॥ (योग० ४.२९)

२. ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः॥ (योग० ४.३०)

३. तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्॥ (योग० ४.३१)

४. धम्ममेघेन वस्सन्ते, सब्बे होन्तु अनासवा। येत्थ पच्छिमका सत्ता, सोतापन्ना भवन्तु ते॥ (बुद्ध अपदान- अप० थेर० १.१.७३)

अनागामी (पुनः संसार में न लौटने वाला) हो जाता है। स्पष्ट है कि अपने वंधनों से मुक्त होकर इस ऊंची अवस्था को प्राप्त कर इस व्यक्ति के लिए जो कुछ जानने योग्य वचा रहेगा वह अत्यल्प ही होगा। पतंजलि भी अपनी 'धर्ममेघ' समाधि को इन वातों से जोड़ते हैं– वाधाओं का दूर होना, मलिनताओं से मुक्ति और आगे ज्ञान की अत्यल्प आवश्यकता।

इस वात की संभावना है कि ऊपर वर्णित लक्षणों के साथ वुद्ध की शिक्षा में पाये जाने वाला 'धम्ममेघ' शव्द पतंजलि को वहुत प्रिय लगा हो और इस कारण उसने अपनी सवसे ऊंची समाधि को यह नाम दे दिया हो। हमारी जानकारी में 'धर्ममेघ' शव्द वेदों तथा इसके उत्तरवर्ती साहित्य में (सिवाय वुद्ध की शिक्षा में अपने पालि स्वरूप में) कहीं देखने में नहीं आता है।

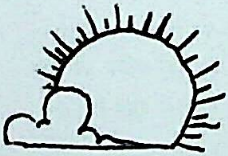
'धर्ममेघ' के समान योगसूत्र में प्रयुक्त शव्द 'प्रसङ्ख्यान' का भी संवंध वुद्ध की शिक्षा में प्रयुक्त हुए शव्द 'सङ्खत'[1] से प्रतीत होता है। वुद्ध के

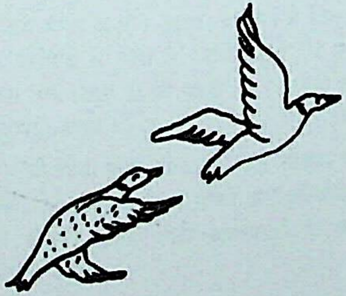
---

१. "सो एवं पजानाति– 'इमञ्चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं आकासानञ्चायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मञ्च चित्तं भावेय्यं; सङ्खतमेतं। इमञ्चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं विञ्ञाणञ्चायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मञ्च चित्तं भावेय्य; सङ्खतमेतं। इमञ्चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं आकिञ्चञ्ञायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मञ्च चित्तं भावेय्यं; सङ्खतमेतं। इमञ्चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मञ्च चित्तं भावेय्यं; सङ्खतमेत'न्ति। (म० नि० ३.३६२)

'सङ्खत' का तात्पर्य चित्त-और-शरीर के क्षेत्र (या, दूसरे शव्दों में, इंद्रिय-क्षेत्र) से है। इस क्षेत्र में पदार्थ (जिसमें धारणाएं भी शामिल हैं) अस्तित्व में आते हैं, कुछ समय तक कायम रहते हैं और अंततः नष्ट हो जाते हैं। 'सङ्खत' का लक्षण है– उत्पत्ति, क्षय तथा परिवर्तन। 'असङ्खत' का उल्टा है– 'अ-सङ्खत', जो निरुपाधिक या अभौतिक तत्त्व अथवा सिद्धांत का द्योतक है। यह 'निव्वान' का दूसरा नाम है (जो अ-कृत, अ-संचित तथा अ-भौतिक होना है)। 'सङ्खतासङ्खतधम्मा' में चित्त की हर संभव धारणा आ जाती है। वुद्ध की शिक्षा 'सङ्खत' क्षेत्र से 'असङ्खत' क्षेत्र की ओर ले जाती है। इसके लिए जो उपाय काम में लिया जाता है वह है– उन्मुक्त विवेकपूर्ण ज्ञान ('विवेकख्याति' या 'विपस्सना')।['सङ्खत' के लक्षणों के लिए देखिए अ० नि० १.३.४७]

अनुसार जो साधक आठों ध्यानों की किसी भी अवस्था में हो, उसकी चेतना तब भी इंद्रिय-क्षेत्र ('सङ्गत') के अंतर्गत ही होती है। ऐसे साधक भी होते हैं जो ध्यान की उच्च अवस्थाओं को प्राप्त करने के पश्चात विवेकयुक्त ज्ञान ('विवेकख्याति') का उपयोग करने के मामले में शिथिल-से हो जाते हैं, क्योंकि वे यह सोचने लगते हैं कि उन्होंने अपना अंतिम लक्ष्य पा लिया है जबकि उनकी विद्यमानता चित्त-और-शरीर के इंद्रिय-क्षेत्र ('सङ्गत') में ही होती है। जो कोई इन अवस्थाओं में भी विवेकपूर्ण ज्ञान के साथ काम करता चला जाता है वह उच्चतम समाधि 'धर्ममेघ' को प्राप्त कर ही लेता है।





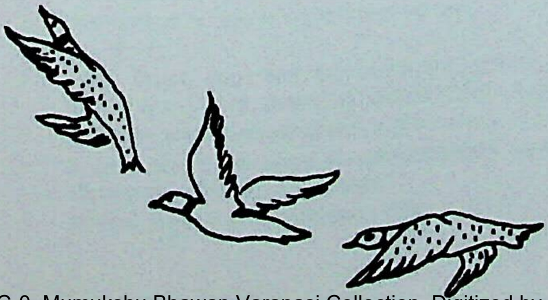


खंड १

(क्रमशः)

बुद्ध की शिक्षा के अनुकूल विषय

ख. परिभाषाएं



● **"अध्यात्मप्रसादः" (आंतरिक प्रसन्नता)**

पतंजलि ने आत्मिक शांति की अभिव्यक्ति के लिए 'अध्यात्मप्रसादः' शब्द का प्रयोग किया है[1]।

बुद्ध ने इसी भाव को समझाने के लिए 'अज्झत्तंसम्पसादो' शब्द काम में लिया है[2]।

● **"अध्वन्" (काल-पथ) –**

पालि के ग्रंथ समय के तीन आधार बतलाते हैं जिनका संबंध अतीत, भविष्य और वर्तमान से होता है ('तयो अद्धा')[3]। इनकी अभिव्यक्ति सामान्यतः इन तीन प्रकार से की जाती है– 'अतीतो अद्धा', 'अनागतो अद्धा', 'पच्चुप्पन्नो अद्धा'।

योगसूत्र में भी किसी सत्त्व की अतीत और भविष्य की अवस्थाओं को 'अतीत अध्व' और 'अनागत अध्व' शब्दों द्वारा अभिहित किया गया है[4]। योगभाष्य में वर्तमान सहित तीनों अवस्थाओं को बतलाते हुए इन्हें 'त्र्यध्वानः'[5] कहा है।

● **"अभिनिवेशः" (स्वयं के जीवन और अस्तित्व से गहरी आसक्ति) –**

योगसूत्र में अपने जीवन और अस्तित्व के प्रति गहरी आसक्ति के लिए 'अभिनिवेशः' शब्द का प्रयोग किया गया है[6]।

---

१. निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः॥ (योग० १.४७)
२. अज्झत्तंसम्पसादो च पीति च सुखञ्च चित्तेकग्गता च०। (म० नि० ३.१.४)
३. "तयोमे, भिक्खवे, अद्धा। कतमे तयो? अतीतो अद्धा, अनागतो अद्धा, पच्चुप्पन्नो अद्धा– इमे खो, भिक्खवे, तयो अद्धा"ति। (इतिवु० ६३)
४. अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम्॥ (योग० ४.१२)
५. ते खल्वमी त्र्यध्वानो धर्मा वर्तमाना व्यक्तात्मानोऽतीतानागताः सूक्ष्मात्मानः षडविशेषरूपाः। (योग० ४.१३ पर योगभाष्य)
६. स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः॥ (योग० २.९)

इस संदर्भ में पालि आगम में दो प्रकार की आसक्तियों का उल्लेख हैः

(१) अपना अस्तित्व सदा बने रहने की आसक्ति, और

(२) स्वय के अस्तित्वहीन हो जाने की आसक्ति (अन्य शब्दों में, भव-संसरण से अपने उत्साद की प्रबल कामना)।

ये आसक्तियां मिथ्यादृष्टि के कारण पनपती हैं। प्रथम धारणा के लोग अपने जीवन को अनंतकाल तक अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते हैं, क्योंकि मरणोपरांत अपने अस्तित्व के समाप्त हो जाने का विचार उन्हें अरुचिकर प्रतीत होता है, जबकि दूसरी धारणा के लोग भव-संसरण से क्षुब्ध होने के कारण इससे सदैव के लिए मुक्ति पा लेना चाहते हैं। बुद्ध की शिक्षा में इन गलत धारणाओं को, क्रमशः, 'भवदिट्ठि' और 'विभवदिट्ठि' की संज्ञा दी गयी है[१]।

● "असम्प्रमोषः" (अक्षुण्णता, क्षति का अभाव) –

योगसूत्र में 'असम्प्रमोषः' (अक्षुण्णता) शब्द का प्रयोग 'स्मृति' (अवधानता) को परिभाषित करते समय वर्तमान क्षण में किसी विषय का बोध होने के संदर्भ में हुआ है[२]।

बुद्ध की शिक्षा में भी विस्मरणशीलता का अभाव ('असम्मुसनता') 'सति' (संस्कृत –'स्मृति')[३] का आवश्यक लक्षण है। 'सति' के इस पक्ष का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है[४]। बुद्ध अधिकारपूर्वक कहा करते थे कि उनकी जागरूकता सदैव अक्षुण्ण बनी रहती है[५]।

---

१. ओलीयनाभिनिवेसो भवदिट्ठि। अतिधावनाभिनिवेसो विभवदिट्ठि। (पटि० म० १४८)
कथञ्च, भिक्खवे, ओलीयन्ति एके? ....एवं खो, भिक्खवे, ओलीयन्ति एके। ....कथञ्च, भिक्खवे, अतिधावन्ति एके? ....एवं खो, भिक्खवे, अतिधावन्ति एके। (पटि० म० १४९)

२. अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः॥ (योग० १.११)

३. "तत्थ कतमा सति? सति........असम्मुसनता......." (पु० प० ५९)

४. सतिया असम्मोसा ते देवा०। (दी० नि० १.४६)

५. "आरद्धं खो पन मे, ब्राह्मण, विरियं अहोसि असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा.......।" (म० नि० १.५१)

● "आलम्वन" (आश्रय) –

योगसूत्र में 'आलम्वन' शव्द का प्रयोग मन का एकाग्र करने के लिए चुने गये 'विपय' अथवा 'आश्रय' के अर्थ में हुआ है[१]।

वुद्ध की शिक्षा में इसी शव्द के पालि स्वरूप 'आरम्मण' का प्रयोग वहुतायत से हुआ है। यहां इसका अर्थ है (चेतना अथवा इसके सहवर्ती तत्त्वों का) 'विपय'। इसकी परिभाषा इस प्रकार की गयी है: 'आरमन्ति एत्थाति आरम्मणं' (अर्थात, चित्त द्वारा यहां रमण करने के कारण इसे 'आरम्मण' कहते हैं।)

● "तनूकरणः" (क्षीणन) –

योगसूत्र में 'तनूकरण' शव्द का प्रयोग 'क्लेश' के क्षीण होने या कम होने के अर्थ में हुआ है[२]।

पालि आगम में भी यह शव्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[३]।

● "दिव्यं श्रोत्रम्" (दैवी श्रवण) –

योगसूत्र में 'दिव्यं श्रोत्रं' का प्रयोग श्रवण की दैवी शक्ति के अर्थ में हुआ है[४]।

वुद्ध की शिक्षा में यही 'दिव्व-सोत' या 'दिव्व सोतधातु'[५] के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह छः उच्च शक्तियों ('छ अभिञ्ञा')[६] में से एक है।

---

१. स्वप्ननिद्राज्ञानालम्वनं वा॥ (योग० १.३८)
२. समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च॥ (योग० २.२)
३. विनय० (२.३१६) (पी. टी. एस.)
फिर, तनिक परिवर्तित रूप में, परंतु उसी अर्थ में – "पुन चपरं, महालि, भिक्खु तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहान तनुत्ता सकदागामी होति........" (दी० नि० १.३९३)
४. श्रोत्राकाशयोः सम्वन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम्॥ (योग० ३.४१)
५. दी० नि० १.२४०
६. दी० नि० ३.३५६

● "निम्न" (हेतु की ओर प्रवृत्त): "प्राग्भार" (सन्निकट) –

योगसूत्र में 'निम्न' एवं 'प्राग्भार' – ये दो शब्द – 'हेतु की ओर प्रवृत्त' एवं 'सन्निकट' के अर्थ में, क्रमशः, प्रयुक्त हुए हैं। एक सूत्रविशेष में इन दोनों शब्दों का प्रयोग पास-पास हुआ है[१]। इन शब्दों के पालि रूप 'निन्न' और 'पब्भार' हैं। पालि ग्रंथों में भी ये शब्द इसी अर्थ में और एक दूसरे के आस-पास प्रयुक्त हुए हैं[२]।

● "निरोध" (उत्पत्ति के क्रम की समाप्ति) –

योगसूत्र में 'निरोध' शब्द का प्रयोग ऊपर दिये गये अर्थ में हुआ है[३]। बुद्ध की शिक्षा में भी यह शब्द इसी अर्थ में बहुधा प्रयोग में आया है[४]।

● "प्रज्ञालोक" (अंतर्दर्शी ज्ञान का आलोक) –

योगसूत्र में 'प्रज्ञालोक' (अंतर्दर्शी ज्ञान का आलोक) शब्द का प्रयोग तिपिटक में प्रयुक्त 'पञ्ञालोको' के अर्थ में ही हुआ है[५]। तिपिटक में चार प्रकार के आलोकों का उल्लेख है: सूर्य-आलोक, चंद्र-आलोक, अग्नि-आलोक एवं प्रज्ञालोक। इनमें से अंतिम आलोक को प्रमुख बतलाया गया है[६]।

---

१. तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम्॥ (योग० ४.२६)
२. पुन चपरं खीणासवस्स भिक्खुनो विवेकनिन्नं चित्तं होति विवेकपोणं विवेकपब्भारं......। (पटि० म० ४४)
३. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥ तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः॥ (योग० १.२.१२.५१)
४. दुक्खखन्धस्स निरोधो, सङ्खारानं निरोधो, निरोधधम्म, निरोधनिस्सित निरोधानुपस्सी, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा। अविज्जा त्वेव असेस-विराग-निरोधा सङ्खारनिरोधो, सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो, विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो; इत्यादि।
५. तज्जयात्प्रज्ञालोकः॥ (योग० ३.५)
६. "चत्तारोमे, भिक्खवे, आलोका। कतमे चत्तारो? चन्दालोको सुरियालोको अग्गालोको पञ्ञालोको– इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो आलोका। एतदग्गं भिक्खवे, इमेसं चतुन्नं आलोकानं यदिदं पञ्ञालोको"ति। (अ० नि० २.४.१४३)

● "प्रातिभ" (उत्कृष्ट प्रकार का वैश्लेषिक ज्ञान) –

योगसूत्र के दो सूत्रों में 'प्रातिभ' शब्द प्रयुक्त हुआ है। पहले सूत्र में बतलाया गया है कि कोई ध्यानी अपने वैश्लेषिक ज्ञान के कारण सब कुछ जान जाता है। दूसरे में इस ज्ञान के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली विभिन्न प्रकार की अतींद्रिय सिद्धियों को गिनाया गया है[1]।

बुद्ध की शिक्षा में समानार्थी शब्द है 'पटिभान'। इसे वैश्लेषिक विज्ञान की चौथी एवं अंतिम सीढ़ी माना है जिसके द्वारा समस्त तथ्यों एवं घटनाओं का सपूर्ण ज्ञान संभव हो पाता है[2]।

● "भावना" (मानसिक विकास) –

योगसूत्र में 'भावना' (मानसिक विकास) शब्द अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है[3]।

बुद्ध की शिक्षा में भी यह शब्द बहुतायत से मिलता है, जैसे – 'लोकिया भावना', 'लोकुत्तरा भावना', 'इन्द्रिय भावना', 'समथ भावना', 'विपस्सना भावना', इत्यादि। यह शब्द 'सम्मावायामो'[4] के अंतर्गत सम्यक प्रयास के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। एक पालि ग्रंथ में[5] 'भावनानं भेदा' शीर्षक के नीचे विभिन्न प्रकार की भावनाओं की परिगणना की गयी है।

---

1 प्रातिभाद्वा सर्वम्॥ ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते॥ (योग० ३.३२,३५)

२ चार विद्याएं हैं– अत्थपटिसम्भिदा, धम्मपटिसम्भिदा, निरुत्तिपटिसम्भिदा पटिभानपटिसम्भिदा। (पटि० म० मातिका २५-२८)
बुद्ध के प्रतिभाशाली शिष्य सारिपुत्त अपने पास यह चारों प्रकार की विद्या होने का दावा किया करते थे। (अ० नि० २.४.१७२)

३. तज्जपस्तदर्थभावनम्॥ मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां......भावनातश्चित्तप्रसादनम्॥ (योग० १.२८.३३)'..........समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च॥ (योग० २.२) विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः॥ (योग० ४.२५)

४. "संवरो च पहानञ्च, भावना अनुरक्खणा। एते पधाना चत्तारो, देसितादिच्चबन्धुना। येहि भिक्खु इधातापी, खयं दुक्खस्स पापुणे"ति। (अ० नि० २.४.१४)

५. पटि० म० २५

● **"भूमि" (क्षेत्र या तल) –**

योगसूत्र में 'भूमि' शब्द का प्रयोग क्षेत्र या तल के अर्थ में हुआ है[१]। बुद्ध की शिक्षा में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। बुद्ध ने चार प्रकार की भूमियां गिनायी हैं– कामावचर, रूपावचर, अरूपावचर तथा अपरियापन्न[२]।

● **"मृदु-मध्य-अधिमात्र" (मृदुल, मध्यम, तीव्र) –**

योगसूत्र में 'मृदु-मध्य-अधिमात्र' (मृदुल, मध्यम, तीव्र) जिस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, बुद्ध की शिक्षा में भी उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[३]। अंतर केवल इतना ही है कि 'अधिमात्र' शब्द संस्कृत शब्द 'तीक्ष्ण' के पालि पर्याय के स्थान पर है (दोनों के अर्थ लगभग एक-समान हैं)। उदाहरण– 'तिखिनिन्द्रियो मज्झिमिन्द्रियो मुदिन्द्रियो' (अर्थात तीक्ष्ण इंद्रियां, सामान्य इंद्रियां तथा मृदु इंद्रियां वाला)[४]।

● **"योगी" (क. योग पद्धति का अनुयायी; ख. ध्यान करने वाला व्यक्ति) –**

योगसूत्र में 'योगी' शब्द का अर्थ है योग पद्धति का अनुयायी अथवा ध्यान करने वाला व्यक्ति[५]।

पालि ग्रंथों में इसके स्थान पर 'योगावचर'[६] शब्द का प्रयोग देखने में आता है। 'विसुद्धिमग्ग' में चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करने वाले के लिए यह एक सामान्य शब्द है।

१. तस्य भूमिषु विनियोगः॥ (योग० ३.६)
२. चतस्सो भूमियो– कामावचरा भूमि, रूपावचरा भूमि, अरूपावचरा भूमि, अपरियापन्ना भूमि। (पटि० म० ७२)
३. मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः॥ (योग० १.२२)
४. अन्य उदाहरण– "पञ्ञवा पुग्गलो तिक्खिन्द्रियो, दुप्पञ्ञो पुग्गलो मुदिन्द्रियो।" (पटि० म० २०८)
५. कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्॥ (योग० ३.७)
६. योगावचरो पञ्चिन्द्रियानि अविक्खेपे पतिट्ठापेति........। (पटि० म० २०३)

● "वशीकार" (वशीकरण) –

'योगसूत्र में 'वशीकार' का तात्पर्य वशीकरण से है[१]।

बुद्ध की देशना में 'वसी' (संस्कृत–'वशी') शब्द खूब प्रचलित था। उदाहरणस्वरूप, बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्त ने आर्य शील, आर्य समाधि, आर्य प्रज्ञा तथा आर्य विमुक्ति को वश में कर रखा था[२]। ज्ञानेंद्रियों का वशीकरण इस प्रकार व्यक्त किया गया है – 'इन्द्रियानं वसीभावता'[३]। स्थविरजन घोषणा किया करते थे कि उन्होंने समाधि[४], अलौकिक शक्तियों[५], इत्यादि को वश में कर रखा था। एक ग्रंथविशेष में पांच प्रकार के वशीकरण गिनाये गये हैं: 'आवज्जन', 'समापज्जन', 'अधिट्ठान', 'वुट्ठान' तथा 'पच्चवेक्खणा' (अर्थात, आवर्जन, समापत्ति, अधिष्ठान, व्युत्थान तथा प्रत्यवेक्षण)[६]।

● "वितर्क" एवं "विचार": (किसी आलंबन पर चित्त का प्रथम प्रतिघात एवं उसमें विचरण) –

योगसूत्र में 'वितर्क' एवं 'विचार' किसी आलंबन पर चित्त का प्रथम प्रतिघात तथा उस विषय में विचरण – इन अर्थों में, क्रमशः, प्रयुक्त हुए हैं[७]।

---

१. परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः॥ (योग० १.४०)
२. "यं खो तं, भिक्खवे.......सारिपुत्तमेव तं सम्मा वदमानो वदेय्य – 'वसिप्पत्तो.......अरियस्मिं सीलस्मिं, वसिप्पत्तो.......समाधिस्मिं, वसिप्पत्तो.......अरियाय पञ्ञाय, वसिप्पत्तो.......अरियाय विमुत्तिया'ति। (म० नि० ३.९.७)
३. पटि० म० १०७
४. उदाहरणतया, पिलिन्दवच्छ कहते हैं– "वसी होमि समाधिसु।" (अप० थेर० १.४०.१५७)
५. पटाचारा का कथन है – "इद्धीसु च वसी होमि।" (अप० थेरी० २.२.५०३)
६. पञ्च वसियो। आवज्जनवसी, समापज्जनवसी, अधिट्ठानवसी, वुट्ठानवसी, पच्चवेक्खणावसी। (पटि० म० ८५)
७. वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात्सम्प्रज्ञातः॥ (योग० १.१७)

बुद्ध की शिक्षा में इन शब्दों के पालि पर्याय 'वितक्क' तथा 'विचार' इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं।

● **"वैशारद्य" (आत्मविश्वास का विषय) –**

योगसूत्र में 'वैशारद्य' शब्द का प्रयोग 'आत्मविश्वास का विषय' के अर्थ में हुआ है। इससे संबंधित सूत्र[१] में कहा गया है कि जब निर्विचार समाधि (अर्थात, दीर्घ अवधानरहित एकाग्रता) से 'वैशारद्य' (आत्मविश्वास) जागने लगता है, तब आंतरिक प्रसन्नता फूटती है। ('अध्यात्मप्रसादः')।

'वैशारद्य' का यह अर्थ पालि शब्द 'वेसारज्ज' की गूंजमात्र प्रतीत होता है। यह प्रसिद्ध है कि किसी सम्यकसंबुद्ध (तथागत) को चार 'वेसारज्ज' (आत्मविश्वास के विषय) प्राप्त रहते हैं[२]।

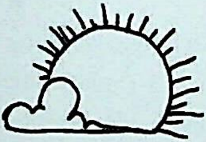
धर्म का प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले किसी 'अग्गियपुग्गल' को अपने आप में विश्वास जमाने के लिए पांच गुणों को ग्रहण करना होता था[३]।

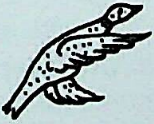
---

१. निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः॥ (योग० १.४७)

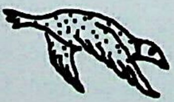
२. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, तथागतस्स वेसारज्जानि......" (अ० नि० २.४.८)

३. 'पञ्चिमे, भिक्खवे, संखवेसारज्जकरणा धम्मा। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु सद्धो होति, सीलवा होति, बहुस्सुतो होति, आरद्धविरियो होति, पञ्ञवा होति।' (अ० नि० ३.५.१०१)



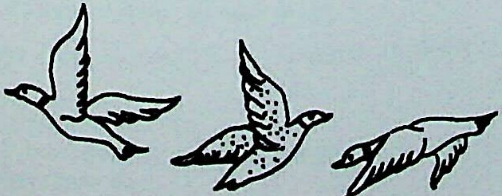






खंड २

बुद्ध की शिक्षा के प्रतिकूल विषय



● लक्ष्य

पतंजलि के अनुसार 'योग' का लक्ष्य है चित्त की वृत्तियों का निरोध ('चित्तवृत्तिनिरोधः')[१]।

बुद्ध के अनुसार ध्यान-साधना का लक्ष्य है चित्त ही का निरोध ('चित्तनिरोधो')[२]।

● धर्मग्रंथों का प्रमाण प्रामाणिक ज्ञान का एक साधन –

पतंजलि के अनुसार 'प्रत्यक्ष ज्ञान', 'अनुमान' और 'धर्मग्रंथों का प्रमाण' (आगम) प्रामाणिक ज्ञान के आधार होते हैं[३]।

बुद्ध ने 'आगम' को प्रामाणिक ज्ञान का आधार स्वीकार नहीं किया है। पालि धर्मग्रंथों के अनुसार बुद्ध ने जिन छः प्रकार के प्राधिकारों की आलोचना की है वे हैं[४]:

१. 'अनुस्सव' (अर्थात, सुनी-सुनाई बात);
२. 'परंपरा' (अर्थात, सामान्य परंपरा);
३. 'इति किरा' (अर्थात, जनश्रुति);
४. 'पिटक-सम्पदा' (अर्थात, सामान्य धर्मग्रंथ);
५. 'भव्यरूप्यता' (अर्थात, वक्ता की श्रेष्ठता); और
६. 'समणो नो गरु' (अर्थात, वक्ता की प्रतिष्ठा)।

● "स्वाध्याय": 'नियमों' का आवश्यक अंग –

योगसूत्र में विहित पांच नियमों ('नियमाः') में 'स्वाध्याय' भी सम्मिलित है[५]।

---

१. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ (योग० १.२)
२. इसे 'सञ्ञावेदयितनिरोध' भी कहते हैं। 'चित्तवृत्तिनिरोध' की तुलना में यह अवस्था उच्चतर है।
३. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि॥ (योग० १.७)
४. केसमुत्तिसुत्त (अ० नि० १.३.६६)
५. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥ (योग० २.३२)

बुद्ध सदा इस बात पर बल दिया करते थे कि धर्म के सैद्धांतिक पक्ष की जानकारी करने की तुलना में इसके वास्तविक आचरण का महत्त्व कहीं अधिक है। किसी वनप्रदेश में रहने वाले एक भिक्षु के बारे में एक रोचक प्रसंग मिलता है। पहले वह विश्रांतिकाल में भी खूब पाठपठन किया करता था, पर जबसे विपश्यना के संपर्क में आया तब से वह इसी के अभ्यास में जुटा रहने लगा[१]।

● **समाधि के लिए शब्दोच्चारण –**

योगसूत्र में यह विज्ञप्त किया गया है कि 'ईश्वर' की भक्ति से भी समाधि की अवस्था प्राप्त की जा सकती है और गुह्य अक्षर 'ओ३म्'[२] से ईश्वर[३] की अभिव्यक्ति होती है। अतः इस शब्द की आवृत्ति करनी चाहिए और इसके अर्थ का संस्मरण[४]।

बुद्ध की शिक्षा में किसी भी प्रकार के शब्दोच्चारण को स्थान नहीं दिया गया है। यदि साधक का उद्देश्य मन की गंदगियों से मुक्ति पाना है तो किसी भी काल्पनिक शब्द का उपालंबन – चाहे वह लोगों द्वारा कितना ही पवित्र क्यों न माना जाता हो – उसकी राह में बाधा ही पैदा करेगा। किसी शब्द या मंत्र को दोहराने से बनावटी तरंगें पैदा होती हैं जिनसे साधक घिर जाता है। ये तरंगें शरीर में उठने वाली नैसर्गिक तरंगों ('संवेदनाओं') के निरीक्षण में बाधा पैदा करती हैं। यदि साधक इन नैसर्गिक तरंगों का निरीक्षण नहीं करता है तो उसके लिए अपने मन की गंदगियों से मुक्ति पाना असंभव हो जाता है। अतः योगसूत्र का यह विधान बुद्ध की शिक्षा से मेल नहीं खाता है।

फिर भी यह उल्लेखनीय है कि पतंजलि ने ईश्वर-भक्ति या 'ईश्वरप्रणिधान' को गौण माना है। सूत्र में 'वा' शब्द का प्रयोग दर्शाता है कि यह पतंजलि द्वारा विहित एक वैकल्पिक मार्ग है। वस्तुतः उन्होंने उस

१. सं० नि० १.१.२३०
२. तस्य वाचकः प्रणवः॥ (योग० १.२७)
३. ईश्वरप्रणिधानाद्वा॥ (योग० १.२३)
४. तज्जपस्तदर्थभावनम्॥ (योग० १.२८)

विधि की अनुशंसा की है जिसका उल्लेख उन्होंने आरंभ में किया है, अर्थात 'संप्रज्ञात समाधि' का आश्रय लेना और तदुपरांत 'अन्य'[1] समाधि की ओर बढ़ जाना, जो संप्रज्ञात से उत्तरवर्ती अवस्था की ओर ले जाती है। यदि यह क्रम उचित नहीं होता, तो पतंजलि अपनी अनुशंसा के क्रम को उलट भी सकते थे। उस स्थिति में ईश्वर-भक्ति या 'ईश्वरप्रणिधान' को प्रथम स्थान और दूसरा स्थान समाधि के अभ्यास को प्राप्त होता[2]।

● "पुरुष": एक निर्विकार तत्त्व –

योगसूत्र में एक निर्विकार तत्त्व 'पुरुष' के बारे में परिकल्पना की गयी है जो किसी भी व्यक्ति के चित्त की समस्त क्रियाओं के बारे में सदैव जागरूक और साक्षी बना रहता है[3]।

बुद्ध ने 'पुरुष'-सरीखे किसी तत्त्व की कोई अवधारणा नहीं की। उनकी दृष्टि में तो शरीर 'मनोमय' होता है[4], अर्थात चित्त से अनुप्राणित रहता है। अभिधम्म ग्रंथों में 'चित्त' के क्रियाकलापों और इसके सहवर्ती तत्त्वों ('चेतसिकों') के संबंध में विस्तार से चर्चा की गयी है।

● धर्मों का उदय-व्यय –

योगसूत्र में ऐसे शब्दों का प्रयोग देखने में मिलता है –

---

१. वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात्सम्प्रज्ञातः॥
विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः॥ (योग० १.१७-१८)

२. 'प्राक्कथन' में बतलाया गया है कि पतंजलि अपने समय में ध्यान के क्षेत्र में प्रचलित जो कुछ उत्कृष्ट समझा जाता था उसके संहिताकार थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने इस विषय को जनता के एक समुदाय को संतुष्ट करने के लिए सम्मिलित किया जो सांसारिक क्लेशों से मुक्ति पाने के लिए इस उपाय को प्रभावकारी मानते रहे होंगे। अन्यथा संबंधित सूत्र उत्तरवर्ती काल में प्रक्षिप्त किये गये भी हो सकते हैं।

३ सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात्॥ (योग० ४.१८)

४ 'मनोमयेसु कायेसु सब्बत्थ पारमि गतो'। (अप० थेर० १.२.५३) और भी देखें – म० नि० ३.१३५

'अभिभवप्रादुर्भावौ'[१] (अर्थात, विलोप तथा उत्पत्ति); 'क्षयोदयौ'[२] (अर्थात, विनाश तथा आरंभ); और 'शान्तोदितौ'[३] (अर्थात, तिरोभाव तथा आविर्भाव)। ये शब्द कुछ धर्मों के क्षय एवं उदय को इंगित करते हैं किंतु ये बुद्ध की शिक्षा के अनुरूप नहीं हैं, क्योंकि बुद्ध की शिक्षा में चित्त-और-शरीर के प्रपंच को 'उदय-व्यय' की प्रक्रिया में शरीर पर होने वाली संवेदनाओं ('वेदना') के साथ जोड़ा गया है। बुद्ध के अनुसार इन संवेदनाओं के द्वारा ही समस्त धर्मों की वास्तविक अनुभूति होती है[४]। पतंजलि इस संबंध में मौन हैं कि संवेदनाओं की सहायता से ही धर्मों को समझा जा सकता है। इन दोनों आचार्यों की देशनाओं में यह एक मौलिक अंतर है।

बुद्ध ने अपनी शिक्षा के सारभूत चार आर्यसत्यों के संदर्भ में असंदिग्ध रूप से यह घोषणा की है कि इनको वेदनाओं के अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है तथा आचरण में उतारा जा सकता है[५]।

बुद्ध के अनुसार धर्मों के उदय-व्यय की एक दिन की अनुभूति वाला जीवन सौ वर्षों तक इनसे अनभिज्ञ बने रहने से कहीं बेहतर है[६]।

---

१. व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः॥ (योग० ३.९)

२. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः॥ (योग० ३.११)

३. ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः॥ (योग० ३.१२)

४. वेदनासमोसरणा सब्बे धम्मा। (अ० नि० ३.१०.५८)

५. वेदियमानस्स खो पनाहं, भिक्खवे, इदं दुक्खन्ति पञ्ञापेमि.......अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदाति पञ्ञापेमि। (अ० नि० १.३.६२)

६. यो च वस्ससतं जीवे, अपस्सं उदयब्बयं।
एकाहं जीवितं सेय्यो, पस्सतो उदयब्बयं॥ (ध० प० ११३)

● सांख्य मत की शव्दावली वेमेल –

योगसूत्र में भारतीय दर्शन के सांख्य मत से कई शव्द लिए गये हैं, जैसे 'गुण', 'प्रकृति', 'प्रधान', 'पुरुष', 'लिङ्ग', 'अलिङ्ग', आदि। इन शव्दों का वुद्ध की शिक्षा से कोई सामजस्य नहीं है। यदि पालि ग्रंथों में इनमें से कोई शव्द मिलते भी हैं, तो उनका प्रयोग और अर्थ सांख्य परंपरा से सर्वथा भिन्न है।

● "संयम" शव्द का पारिभाषिक प्रयोग –

पतंजलि ने 'संयम' शव्द का प्रयोग पारिभाषिक शव्द के रूप में किया है जिससे आशय है उनके द्वारा विहित 'धारणा', 'ध्यान' और 'समाधि' का एकीकरण[1]। जव इसमें पूर्णता आ जाती है तव यह कई प्रकार की अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति में सहायक वन जाता है[2]।

वुद्ध ने इस शव्द का प्रयोग इसके सामान्य अर्थ में ही किया है[3]।

● "कैवल्य" अवस्था –

पतंजलि के अनुसार "कैवल्य" की प्राप्ति योग साधना का अंतिम लक्ष्य है। उनके अनुसार जव 'गुण' प्रच्छन्न होकर पुरुषार्थशून्य अवस्था में आ जाते हैं, तव 'कैवल्य' फलित हो जाता है[4]।

---

१. देशवन्धश्चित्तस्य धारणा॥ (योग० ३.१)
तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्॥ (योग० ३.२)
तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः॥ (योग० ३.३)
त्रयमेकत्र संयमः॥ (योग० ३.४)

२. योग० ३.१६ से आगे

३. यम्हि सच्चञ्च धम्मो च, अहिंसा संयमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो, थेरो इति पवुच्चति॥ (ध० प० २६१)

४. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं०॥ (योग० ४.३४)

बुद्ध की शिक्षा में 'केवल' और 'केवली' शब्दों का प्रयोग मिलता है। किंतु वहां इनका प्रयोग परम मुक्ति की निर्मल और विशुद्ध अवस्था को इंगित करने के लिए हुआ है। अत: 'केवली' अवस्था प्राप्त किये हुए व्यक्ति में ये पांच बातें होंगी ही - अशैक्ष्य का शील, अशैक्ष्य की समाधि, विमुक्ति, वैसा ही ज्ञान और अर्हत के धर्म-संबंधी ज्ञान की पराकाष्ठा[१]।

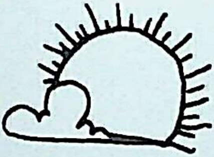
स्वयं बुद्ध को भी 'केवली'[२] कहकर संबोधित किया जाता था।

बुद्ध की वाणी में ऐसा ही आशय 'मत्त' (मात्र) शब्द से प्रकट किया जाना भी पाया जाता है। दीघनिकाय के महासतिपट्ठान सुत्त में इस शब्द का प्रयोग पंद्रह बार हुआ है। वहां यह बतलाया गया है कि जब तक मात्र ज्ञान, मात्र दर्शन बना रहता है तब तक साधक अनाश्रित होकर विहरता है और लोक में कुछ भी ग्रहण नहीं करता[३]।

१. "असेखेन च सीलेन, असेखेन समाधिना।
विमुत्तिया च सम्पन्नो, ञाणेन च तथाविधो॥
स वे पञ्चङ्गसम्पन्नो, पञ्च अङ्गे विवज्जयं।
इमस्मिं धम्मविनये, केवली इति वुच्चती"ति॥ (अ० नि० ३.१०.१२)

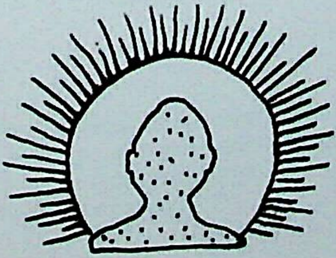
२. यो धम्मचक्कं अभिभुय्य केवली, पवत्तयी सब्बभूतानुकम्पी।
(अ० नि० १.४.८)

३. यावदेव ञाणमत्ताय, पटिस्सतिमत्ताय, अनिस्सितो च विहरति, न च किञ्चि लोके उपादियति। (दीघ० २.३७४-३८५, ४०३)



खंड ३

अलौकिक शक्तियां



योगसूत्र में ऐसी अनेक अलौकिक शक्तियों का वर्णन मिलता है जो कोई योगी प्राप्त कर सकता है। इनमें से कुछेक इस प्रकार हैं:

भूत-भविष्य का ज्ञान; पूर्व-जन्मों का ज्ञान; परचित्त का ज्ञान; ग्रह-नक्षत्रों के क्रम एवं गति सहित ब्रह्मांड का ज्ञान; शरीर-तंत्र का ज्ञान; अतींद्रिय ज्ञान; सिद्धों का दर्शन; दृष्टि से ओझल हो जाने की शक्ति; भूख-प्यास के निग्रह की शक्ति; आकाश में विचरण करने की शक्ति; दैवी श्रवण; सर्वज्ञता; चित्त के समान वेग; मूल तत्त्वों पर प्रभुत्व; इत्यादि[1]।

बुद्ध के अनुसार छः उच्चतर शक्तियों का साक्षात्कार किया जा सकता है[2]। ये शक्तियां हैं:

❶ रहस्यात्मक शक्तियां ('इद्धिविध') –

एक सत्त्व से अनेक हो जाने और अनेक होने पर पुनः एक हो जाने की शक्ति; प्रकट होने और अंतर्धान हो जाने की शक्ति; किसी दीवार, परकोटे अथवा पर्वत में से बिना बाधा के हवा को पार करने के समान लांघ जाना; जमीन में ऐसे धँसना और ऊपर आ जाना मानो यह पानी हो; पानी को बिना काटे इस पर ऐसे चलना मानो यह ठोस धरती हो; पालथी लगाकर पक्षी की तरह आकाश में विचरण करना; चंद्रमा व सूर्य जैसे प्रबल और शक्तिशाली ग्रहों का हाथ से स्पर्श; और सुदूर ब्रह्मलोक तक की सशरीर यात्रा कर पाना।

---

१. योग० ३.१६-४९

२. "कतमे छ धम्मा सच्छिकातब्बा? छ अभिञ्ञा: इधावुसो, भिक्खु अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति– एकोपि हुत्वा बहुधा होति बहुधापि हुत्वा एको होति........आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति।
(दी० नि० ३.३५६)

❷ श्रवण की दैवी क्षमता ('दिव्व सोतधातु') –

जिससे दूरवर्ती तथा निकट की दिव्य और मानुषिक ध्वनियों को सुना जा सकता हो।

❸ परचित्तज्ञान ('परस्स चेतोपरियञाण') –

दूसरे प्राणियों और मनुष्यों के चित्त को अपनी मनःशक्ति से बेध कर उनके चित्त की अवस्था को जान लेना।

❹ पूर्वजन्मों की स्मृति ('पुब्बेनिवासानुस्सति') –

पूर्वजन्मों को इसके समस्त आकारों, विवरणों और विभिन्न अस्तित्वों में विस्तार से स्मरण कर पाना।

❺ दिव्यदृष्टि ('दिव्व चक्खु') –

कोई व्यक्ति अपनी दिव्य दृष्टि से साफ-साफ एवं मनुष्यों की क्षमता से बढ़-चढ़ कर प्राणियों की शरीर-च्युति एवं उत्पत्ति को विवरणसहित जान सकता है – जैसे निकृष्ट अथवा उत्तम योनि की प्राप्ति, सुंदर अथवा कुरूप होना, मरणोपरांत अपने कर्मानुसार सुखद अथवा विषादमय अवस्था में जा पहुंचना।

❻ चित्त-मलों की समाप्ति का ज्ञान ('आसवक्खयकरञाण') –

चित्त-मलों ('आस्रवों') का उन्मूलन कर चित्तमुक्ति की उस अवस्था में प्रवेश कर टिके रहना जो चित्त-मलों से पूर्णतया मुक्त हो। इस जीवन में भी अपने उच्च ज्ञान के परिणामस्वरूप मुक्त होकर इसका साक्षात्कार किया जा सकता है।

इनमें से पहली पांच शक्तियां सांसारिक या लौकिक ('लोकिय') स्तर की हैं क्योंकि इनको समाधि की पूर्ण परिष्कृत अवस्था में प्राप्त किया जा सकता है जबकि छठी लोकोत्तर ('लोकुत्तर') है जो गहरी अंतर्दृष्टि ('विपस्सना')

द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। जबकि अन्य शक्तियां या क्षमताएं दूसरे लोग भी अधिगत कर सकते हैं, अंतिम शक्ति या क्षमता केवल सम्यकसंबुद्ध या 'अर्हन्त' के ही गोचर होती है।

बुद्ध और उनके कुछ प्रतिष्ठित शिष्यों को समस्त छः अलौकिक शक्तियां उत्कृष्ट रूप में प्राप्त थीं। ये शक्तियां इतनी विशिष्ट थीं कि इनको छिपाये रखना असंभव था। इसी कारण बुद्ध के प्रसिद्ध शिष्य महाकाश्यप को भी यह स्पष्टतः कहना पड़ा कि इन छः अलौकिक शक्तियों को छिपाने का विचार ठीक वैसा ही होगा जैसे कोई व्यक्ति सात-या-साढ़े-सात हाथ ऊंचे विशालकाय हाथी को नन्हे-से ताड़पत्र में छिपाने की बात सोचे[१]।

योगसूत्र में इन अलौकिक शक्तियों को प्राप्त करने के लिए कोई वास्तविक विधि या प्रक्रिया नहीं दर्शायी गयी है। इसका यह भी कारण हो सकता है कि योगसूत्र की लेखनशैली में किसी विषय-वस्तु की विस्तार से चर्चा किये जाने की गुंजाइश नहीं थी। किंतु बुद्ध ने स्वयं कहीं-कहीं विधि या प्रक्रिया को स्पष्ट किया है[२]। अपने शिष्य आनंद को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा है:

"आनंद! जब कभी तथागत अपने चित्त में काया को और काया में चित्त को एकाग्र कर एक विशेष प्रकार की विश्रांति और उदात्तता के भाव में स्थित हो जाते हैं, तब आनंद! तथागत की काया अधिक उदात्त, अधिक सौम्य, अधिक लचीली और अधिक कांतिमय हो जाती है।

"आनंद! कल्पना करो एक लोहे की गेंद को दिन में तपाया जाय। इसके परिणामस्वरूप वह अधिक हल्की, अधिक नरम, अधिक लचीली, और अधिक चमकीली हो जाती है। तथागत के शरीर में भी यह सब घटित होता है।"

---

१. "......सत्तरतनं वा, आवुसो, नागं अड्ढट्ठमरतनं वा तालपत्तिकाय छादेतब्बं मञ्ञेय्य, यो मे छ अभिञ्ञा छादेतब्बं मञ्ञेय्या"ति। (सं० नि० १.२.१५३)

२. "यस्मिं, आनन्द, समये तथागतो कायम्पि चित्ते समोदहति, चित्तम्पि काये समोदहति........याव ब्रह्मलोकापि कायेन वसं वत्तेति।......."ति। (सं० नि० ३.८३४)

"आनंद! तथागत जिस समय अपनी काया को चित्त में और चित्त को काया में इस प्रकार एकाग्र कर लेते हैं तब उनका शरीर बिना कठिनाई के सहज ही पृथ्वी से आकाश की ओर उठने लगता है, और ऐसे समय में वह रहस्यमयी शक्तियों का विभिन्न प्रकार से उपभोग करते हैं – जैसे, एक सत्त्व से अनेक हो जाना और अनेक से पुनः एक हो जाना, इत्यादि और सुदूर ब्रह्मलोक तक में सशरीर यात्रा कर पाना।"

तिपिटक में ऐसे वृत्तांत मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि बुद्ध के अनेक शिष्यों को अलौकिक शक्तियां विशिष्ट रूप से प्राप्त थीं। बुद्ध ने स्वयं पुरुषों में महामोग्गल्लान[१] और महिलाओं में उप्पलवण्णा[२] को ऐसे विशिष्ट शिष्यों में 'अग्र' की उपाधि दी थी। भिक्षु अनुरुद्ध[३] की अलौकिक शक्तियां का वर्णन अनेक सुत्तों में मिलता है। भिक्षु सारिपुत्त के संबंध में रोचक वृत्तांत मिलता है[४] कि एक गुजरते हुए दानव द्वारा उनके सिर पर भीषण प्रहार करने के बावजूद भी उनका ध्यान भंग नहीं हुआ।

पतंजलि की मान्यता है कि उच्च इंद्रियगत शक्तियां समाधि की प्राप्ति में तो बाधक होती हैं, किंतु बहिर्मुखी रहने वाले व्यक्ति के लिए[५] अवश्य उपलब्धि के समान हैं। वाचस्पतिमिश्र[६] इसे निम्नानुसार समझाते हैं –

---

१. "एतग्गं, भिक्खवे, मम सावकानं भिक्खूनं इद्धिमन्तानं यदिदं महामोग्गल्लानो।" (अ० नि० १.१.१९०)

२. "एतग्गं, भिक्खवे, मम साविकानं भिक्खुनीनं इद्धिमन्तीनं यदिदं उप्पलवण्णा।" (अ० नि० १.१.२३७)

३. संयुत्त० ३.२.९०९-९२१

४. सिर का मुंडन करवाने के तत्काल पश्चात सारिपुत्त खुले आकाश के तले ध्यानावस्थित थे। तभी एक दानव ने उनके सिर पर इतना भीषण प्रहार किया कि एक सात साढ़े-सात हाथ ऊंचा हाथी भी उस चोट से धराशायी हो जाता अथवा एक पहाड़ की चोटी भी उस प्रहार से भग्न हो जाती। किंतु सारिपुत्त ने उस प्रहार को बिना किसी विशेष कष्ट के सहन कर लिया। (उदा० ४.३४)

५. ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः॥ (योग० ३.३७)

६. तत्त्ववैशारदी (योगसूत्र पर लिखे गये भाष्य – 'योगभाष्य') के रचयिता

"एक प्रदर्शनप्रिय मन इन सिद्धियों को अति श्रेष्ठ मानता है, ठीक वैसे ही जैसे घोर विपन्नता में जन्मा हुआ कोई व्यक्ति तुच्छ धनराशि को भी धन का वड़ा अंवार मान लेता है। किंतु एकाग्रचित्त योगी को इन सिद्धियों से वचना चाहिए, चाहे वे इसके निकट भी क्यों न लायी जावें। जिस योगी में जीवन का अंतिम लक्ष्य प्राप्त करने की चाह है, जो तीनों प्रकार के दुःखों को पूरी तरह शमन करने के लिए आतुर है उसमें इन सिद्धियों के प्रति रुझान कैसे हो सकता है जो कि इस उद्देश्य की प्राप्ति में वाधक होती हैं[1]?"

वुद्ध ने भी अलौकिक शक्तियों के प्रति किसी प्रकार का आवेश या सम्मोह जगाना उचित नहीं वतलाया है। उनके कथनानुसार ऐसी शक्तियां अंतर्दृष्टि की अवरोधक ही होती हैं – यद्यपि एकाग्रता के लिए नहीं, क्योंकि एकाग्रता से ही इन्हें प्राप्त किया जाता है[2]।

वुद्ध ने जनमानस में अपने प्रति श्रद्धा-भक्ति वढ़ाने के लिए अलौकिक शक्तियों के प्रदर्शन को हतोत्साहित किया[3]। उनके कथनानुसार गंधारी विद्या ('गन्धारी विज्जा') सीखकर भी चमत्कार दिखाने की क्षमता प्राप्त की जा सकती है। अतः ऐसे प्रदर्शनों का स्तवन नहीं करना चाहिए। इनमें

---

१. "द योग सिस्टम आफ पतंजलि" (हार्वर्ड ओरियण्टल सीरीज – वोल्यूम १७) में जेम्ज हाटन वुड्स द्वारा अनूदित

२. विसुद्धि० १.४१

३. एक वार वुद्ध नालंदा के पावारिक आम्र-कुंज में विहार कर रहे थे। तव एक युवा गृहस्थ केवट्ट ने आकर उनसे निवेदन किया, "भंते! यह हमारा नालंदा क्षेत्र वहुत संपन्न, समृद्ध और घनी आवादी वाला है। साथ ही यहां तथागत में श्रद्धा रखने वालों की संख्या भी वहुत है। यदि तथागत अपने किसी भिक्षु को यहां चमत्कार दिखलाने के लिए कहेंगे तो यहां के निवासियों में भगवान के प्रति श्रद्धाभाव में वहुत वृद्धि होगी।"
यह सुनकर तथागत ने उसे उत्तर दिया, "केवट्ट! मैं अपने भिक्षुओं को धर्म इसलिए नहीं सिखलाता कि वे श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थों के वीच जाकर अपनी रहस्यमयी शक्तियों के चमत्कारों का प्रदर्शन करें।"
(दी० नि० १.४८२)

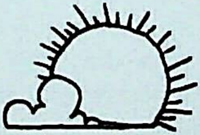
निहित संकटों का अनुमान लगाकर इनको तिरस्कार, लज्जा और घृणा की दृष्टि से ही देखना चाहिए[१]।

एक बार बुद्ध ने अपने शिष्य पिंडोल भारद्वाज को अपनी अलौकिक शक्तियों का दुरुपयोग करने के लिए प्रताड़ित किया था। पिंडोल ने राजगृह-निवासी एक धनाढ्य व्यापारी द्वारा स्थापित हवा में ऊंचा झूलता हुआ चंदन का एक कीमती कटोरा अपनी शक्ति के बल पर शृंखलाबद्ध बल्लियों के शीर्ष भाग से नीचे उतार लिया था जिसे कोई दूसरा संन्यासी या ब्राह्मण नहीं उतार पाया था। जब तथागत को यह कटोरा भेंट किया गया तब उन्होंने भिक्षुओं को इसके टुकड़े टुकड़े कर देने के लिए कहा। साथ ही उन्होंने गृहस्थों के सम्मुख अपने शिष्यों के अतींद्रिय शक्ति प्रदर्शन को सदा के लिए निषिद्ध कर दिया और यह भी विज्ञप्त किया कि यदि भविष्य में किसी भिक्षु ने ऐसा प्रदर्शन किया तो वह दुष्कर्म ('दुक्कट')[२] का भागी माना जायगा।

---

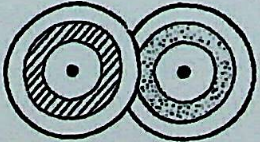
१. "इमं खो अहं, केवट्ट, इद्धिपाटिहारियें आदीनवं सम्पस्समानो इद्धिपाटिहारियेन अट्टीयामि हरायामि जिगुच्छामि।" (दी० नि० १.४८५)

२. चूळव० २५२



खंड ८

लक्ष्य-प्राप्ति



पतंजलि की मान्यता है कि मनुष्य को उन दुःखों से बचना चाहिए जो अभी प्रकट नहीं हुए हैं[1]। बुद्ध की भी देशना थी कि अहितकर, पापपूर्ण धर्म जो अभी उत्पन्न नहीं हुए हों, उनके उत्पन्न न होने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए[2]। उनके अनुसार 'दुःख का निरोध' एक आर्यसत्य है[3] (जिसे अनुभव के स्तर पर जाना जा सकता है।)

योगसूत्र के अनुसार सभी दुःखों का कारण है- पुरुष नाम के अपरिवर्तनीय तत्त्व का व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं के साथ मिथ्या तादात्म्य[4]। बुद्ध के अनुसार समस्त दुःखों का कारण है- तृष्णा ('तण्हा')[5], किंतु तलस्पर्शी गहराई पर जाकर देखें तो दुःख का मूलभूत कारण है- अविद्या ('अविज्जा')[6]।

इस परिप्रेक्ष्य में योग-साधना का लक्ष्य है पुरुष-सत्त्व के लिए कैवल्य अवस्था की प्राप्ति; जिसका अर्थ होगा व्यक्ति की समस्त मानसिक प्रक्रियाओं या चित्त-वृत्तियों का निरोध। बुद्ध की शिक्षा का अंतिम लक्ष्य है- मनुष्य की अज्ञानता ('अविज्जा') का उन्मूलन कर तृष्णा ('तण्हा') को जड़

---

१. हेयं दुःखमनागतम्॥ (योग० २.१६)

२. अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय आतप्पं करणीयं। (अ० नि० १.३.५०)

३. दुक्खनिरोधं अरियसच्चं। (दी० नि० ३.३५४)

४. योग० १.१६; ३.३५,५५; ४.१८,२३,३४ में संकेतित

५. "कतमं चावुसो, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं? यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दीरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी, सेय्यथीदं- कामतण्हा भवतण्हा विभवतण्हा, इदं वुच्चतावुसो- 'दुक्खसमुदयं अरियसच्चं'। (म० नि० ३.३७४)

६. प्रतीत्य-समुत्पाद ('पटिच्च-समुप्पाद') शृंखला की प्रथम कड़ी 'अविज्जा' है। यही सभी अन्य मानसिक कलुषताओं का मूल कारण है और इसी हेतु 'दुःख' का भी मूल है। बुद्ध इसे निकृष्टतम कलुषता मानते थे ('अविज्जा परमं मलं') (ध० प० २४३)

से उखाड़ फेंकना। यह अवस्था तब आती है जब अहंभाव पूरी तरह से नष्ट हो जाता है।

साधना की दो पद्धतियां

दोनों साधना-पद्धतियों के अनुयायिओं को अपने-अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नीचे दर्शाये क्रमानुसार अग्रसर होना होता है।

योग-पद्धति –

१ साधक के लिए आवश्यक है कि वह योगसूत्र में विहित समस्त यम और नियम ('यमनियमाः')[१] पालन करने का प्रयत्न करे।

२ ध्यान करने के लिए बैठते समय वह ऐसा आसन चुने जिसमें स्थिर होकर सुखपूर्वक ('स्थिरसुख')[२] बैठ सके।

३ तदनंतर वह प्राणायाम का अभ्यास करे जिससे अस्थिर चित्त शांत हो जाय[३]। (विकल्प के रूप में, चित्त स्थिर करने के लिए वह अन्य आलंबन भी काम में ले सकता है[४]।)

४ इसके उपरांत वह समाधि की विभिन्न अवस्थाओं में से गुजर कर उस अवस्था में पहुंच सकता है जहां उसे कुछ उपलब्धियां होने लगें जिन्हें 'समापत्ति' कहा जाता है। ये निम्नानुसार हैं:

क. सवितर्का सविचारा[५] – इससे आशय है 'वितर्क' या 'विचार' से युक्त 'समापत्ति', अर्थात किसी विषय या वस्तु से मन का प्रारंभिक संपर्क (अथवा प्रतिघात) और उस विषय या वस्तु में विचरण करना।

ख. निर्वितर्का निर्विचारा[६] – इससे आशय है 'वितर्क' या 'विचार' से रहित 'समापत्ति', जिसमें किसी विषय या वस्तु से मन का प्रारंभिक

---

१. योग० २.३०,३२
२. स्थिरसुखमासनम्॥ (योग० २.४६)
३. (योग० १.३४) के साथ पढ़ते हुए (योग० २.४९,५०,५१)
४. योग० १.३५,३९
५. तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः॥ (योग० १.४२)
६. स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का॥ (योग० १.४३)

संपर्क (अथवा प्रतिघात) न होना और न ही उस विषय या वस्तु में विचरण करना।

ग. विचाररहित ('निर्विचार') 'समापत्ति' की अवस्था में अंतर्दृष्टि ('प्रज्ञा') उत्पन्न होती है[1]।

घ. अंतर्दृष्टि ('प्रज्ञा') के प्रभाव से ऐसा 'संस्कार' उत्पन्न होता है जो दूसरे संस्कारों के बनने में बाधक होता है[2]।

ङ. उक्त प्रकार से संस्कार नियंत्रित हो जाने के कारण समस्त मानसिक प्रक्रियाएं निरुद्ध हो जाती हैं[3]। (ऐसी स्थिति में साधक 'पुरुष'-नामक सत्त्व का अपनी मानसिक प्रक्रियाओं से पार्थक्य अनुभव करने लगता है।)

बुद्ध-पद्धति –

१ इसके अंतर्गत साधक को बुद्ध की शिक्षा में विहित विभिन्न नैतिक नियमों ('सील') के पालन का प्रयास करना होता है[4]।

२ ध्यान करने के लिए बैठते समय उसे पालथी मारकर, शरीर को सीधा रखते हुए, मुख के इर्दगिर्द[5] (विशेषकर, मुंह के ऊपरी हिस्से पर)[6] जागरूकता को स्थापित करना होता है।

---

१. निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः॥ ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा॥ (योग० १.४७,४८)
२. तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी॥ (योग० १.५०)
३. तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः॥ (योग० १.५१)
४. दी० नि० १.१९४
५. निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा, उजुं कायं पणिधाय, परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। (दी० नि० २.३७४)
६. इस स्थानविशेष को इस प्रकार समझना होता है - 'नासिकग्गे उत्तरोट्ठस्स वेमज्झप्पदेसे' अर्थात 'नासिका से आगे ऊपर वाले होंठ के बीचोंबीच जो स्थान है वहां पर'। इसी ठौर पर स्वाभाविक रूप से आने जाने वाले सांस की जानकारी बना कर रखनी होती है। यह व्याख्या 'आनापानस्सति' की उस जीवंत परंपरा के अनुरूप है जिसका निर्वाह म्यंमा के दिवंगत आचार्य सयाजी ऊ बा खिन ने किया और वर्तमान में कल्याणमित्र श्री सत्यनारायण गोयन्का केवल भारत में ही नहीं, विश्वभर में कर रहे हैं। (विसु० अट्ठ० ८.३४७)

३ तत्पश्चात उसे अपने श्वास-प्रश्वास पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए ('आनापानस्सति')[१]। इससे उसका अशांत चित्त शांत होने के साथ-साथ थोड़ा-बहुत शुद्ध भी होने लगता है।

४ 'आनापानस्सति' के गहन अभ्यास के कारण उसे चार प्रकार के ध्यानों ('झान')[२] की अनुभूति होती है जिनको चार 'समापत्तियां' कहते हैं। इनका विवरण निम्नानुसार है –

(क) **प्रथम ध्यान** – समस्त लिप्साओं एवं मानसिक कलुषताओं से असंबद्ध रह कर मुमुक्षु साधक प्रथम ध्यान में प्रवेश पाता है। अनासक्ति से उत्पन्न इस स्थिति में उसके मन का किसी विषय या वस्तु से प्रारंभिक संपर्क (प्रतिघात) होता है ('सवितक्कं'), उस विषय या वस्तु में विचरण होने लगता है ('सविचारं') और वह प्रीति तथा सुख से परिपूर्ण होता है ('पीतिसुखं')।

(ख) **द्वितीय ध्यान** – किसी विषय या वस्तु के प्रति मन के प्रारंभिक संपर्क (प्रतिघात) एवं उस विषय अथवा वस्तु में विचरण कम हो जाने पर साधक आंतरिक प्रशांति तथा चित्त के एकत्व की स्थिति प्राप्त कर उस अवस्था में प्रवेश करता है जो उस विषय या वस्तु के प्रति मन के प्रारंभिक संपर्क (प्रतिघात) एवं उस विषय अथवा वस्तु में विचरण से मुक्त होती है ('अवितक्कं अविचारं')। यह अवस्था द्वितीय ध्यान कहलाती है जो एकाग्रता से उत्पन्न होती

१. दी० नि० २.३७४

२. 'इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति; वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखञ्च कायेन पटिसंवेदेति यं तं अरिया आचिक्खन्ति 'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी'ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।' (दी० नि० २.४०२)

है और समाधि से जनित प्रीति एवं सुख से परिपूर्ण होती है ('समाधिजं पीतिसुखं')।

(ग) **तृतीय ध्यान** – प्रीति और सुख की अनुभूति समाप्त होने पर ('पीतिया च विरागा') साधक समता, जागरूकता तथा अनित्यता की सतत एवं संपूर्ण अनुभूति करने लगता है ('उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो')। तब वह अपनी काया में उस सुख का अनुभव करता है जिसके लिए आर्यजन कहते हैं कि "वह समता, जागरूकता तथा सुख में स्थिर है।" इस तरह वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है।

(घ) **चतुर्थ ध्यान** – काया और चित्त के समस्त सुखों और दुःखों के उन्मूलन के पश्चात साधक उस अवस्था में प्रवेश करता है जो सुख और दुःख से परे की अवस्था है ('अदुक्खं असुखं')। यह चतुर्थ ध्यान की अवस्था है जो 'उपेक्खा' (उपेक्षा, समता) तथा 'सति' (स्मृति, जागरूकता) से 'पारिसुद्ध' (परिशुद्ध, परिष्कृत) होती है ('उपेक्खासतिपारिसुद्धिं')।

चतुर्थ ध्यान की चरम अवस्था प्राप्त होने पर साधक दुःख और सुख से परे की अवस्था ('अदुक्खमसुखं') में चला जाता है जिसमें गहरी प्रशांति, जिसे 'पस्सद्धि' (प्रश्रब्धि) कहते हैं, प्राप्त होती है। यह एक विशेष संकटपूर्ण अवस्था भी है क्योंकि इसे पाकर साधक को भ्रम होने लगता है कि उसने निर्वाण पा लिया है और वहीं अपना काम बंद कर देना चाहता है। जब ऐसा होने लगे तब साधक को अपने संपूर्ण विवेक और धैर्य के साथ अनित्य ('अनिच्च') की अनुभूति करते हुए इस संकटपूर्ण स्थिति के पार हो जाना चाहिए। इसमें सफल होकर साधक 'निरोध-समापत्ति'[1] की अवस्था प्राप्त करता है जो नैर्वाणिक अवस्था ('निब्बान') का ही दूसरा नाम है।

---

१. इसे 'सञ्ञावेदयितनिरोध' भी कहते हैं क्योंकि इसमें संज्ञा और वेदना (संवेदना) का निरोध हो जाता है।

ध्यान-संबंधी पक्षों का तुलनात्मक विवेचन

दोनों पद्धतियों के ध्यान-संबंधी पक्षों का तुलनात्मक विवेचन निम्न प्रकार से किया जा रहा है:-

● **प्रारंभिक चरण –**

दोनों पद्धतियों के प्रारंभिक चरण में यह समानता है कि मुमुक्षु साधक को अपनी अहितकर चैतसिक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखने हेतु एक निर्धारित नैतिक संहिता का पालन करना होता है।

● **आसन –**

दोनों पद्धतियों में इस बात पर बल दिया गया है कि साधक ध्यान करने के लिए ऐसा आसन चुने जिसमें लंबे समय तक स्थिर रह कर सुखपूर्वक बैठा जा सके[1]। पतंजलि का मत है कि इस प्रकार का आसन तब प्राप्त किया जा सकता है जब इसके लिए कोई प्रयत्न न करना पड़े और चित्त स्वत: ही अनंत की ओर प्रवृत्त होने लगे[2]। बुद्ध का मत भी ठीक इसी प्रकार का है जिसमें आवश्यक घटक यह है कि नैसर्गिक रीति से जो हो रहा हो, उसे होने दिया जाय ('यथाभूत'), अर्थात इस हेतु कोई भी प्रयास न किया जाय। जहां तक चित्त के अनंत की ओर प्रवृत्त होने का प्रश्न है, चतुर्थ ध्यान की चरम अवस्था ('समापत्ति') के समय शरीर की पांचों इंद्रियों के निष्क्रिय हो जाने पर यह स्थिति स्वत: ही उभर आती है। आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त जैसे बुद्ध के पूर्ववर्ती योगी इसमें खूब निष्णात थे।

बुद्ध ने इस बात पर अतिरिक्त बल दिया है कि साधक को मुंह के इर्दगिर्द अपनी जागरूकता स्थिर कर लेनी चाहिए ('परिमुखं सतिं

१. स्थविरी विजया ऐसे सुखासन में बैठी कि उसने ध्यान के सातवें दिन अपना पांव पसारा। देखिए -
पीतिसुखेन च कायं, फरित्वा विहरिं तदा।
सत्तमिया पादं पसारेसिं, तमोखन्धं पदालिया॥ (थेरीगा० १७४)

२. प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्याम॥ (योग० २.४७)

उपट्ठपेत्वा')। उनकी देशना के अनुसार साधक को अपनी जागरूक रहने की क्षमता ('सति') को खूब वलिष्ठ वना लेना चाहिए। इस क्षमता के कारण ही अन्य प्रकार की क्षमताएं भी पुष्ट होती हैं और ध्यान की संपूर्ण प्रक्रिया नियमित रूप से चलती है। जैसे सभी प्रकार के व्यंजनों में लवण एक अनिवार्य घटक है, वैसे ही ध्यान के क्षेत्र में भी सर्वत्र 'सति' की आवश्यकता रहती है[१]।

● 'प्राणायाम' तथा 'आनापान' –

जिस प्रकार योग के अन्य लेखकों ने 'आसनों' के वारे में वहुत कुछ लिखा है, उसी प्रकार 'प्राणायाम' के वारे में भी लिखा है जो कि पतंजलि के आशय से सर्वथा मेल नहीं खाता[२]। (वुद्ध के समान) पतंजलि ने भी यह अनुभव कर लिया था कि श्वास-प्रश्वास का चित्त से गहरा संवंध होता है और इसी कारण उत्तेजना, क्रोध, व्याकुलता, आदि होने पर श्वास की गति तेज और अनियमित हो जाती है[३]। ऐसी स्थिति में अशांत चित्त को स्थिर और शांत वनाने के लिए पतंजलि ने प्राणायाम के अभ्यास का विधान किया था। पतंजलि ने प्राणायाम के संवंध में केवल यह व्याख्या (परिभाषा) प्रस्तुत की थी कि यह श्वास और प्रश्वास की गतियों में एक विच्छेद की स्थिति है ('श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः')[४]। इस संवंध में उन्होंने यह विधान किया कि श्वास की वाहरी, भीतरी और थम जाने की स्थिति को एक सीमित क्षेत्र

---

१. तेनाह –
"सति च पन सब्बत्थिका वुत्ता भगवना। किंकारणा?
चित्तं हि सतिपटिसरणं, आरक्खपच्चुपट्ठाना च सति,
न विना सतिया चित्तस्स पग्गहनिग्गहो होती"ति। (विसुद्धि० १.६२)

२. उदाहरणतया, 'घेरण्डसंहिता' ने ९६ श्लोकों के साथ एक पूरा अध्याय 'प्राणायाम' को समर्पित किया है और 'ध्यान' और 'समाधि' को केवल ४५ श्लोकों में निपटा दिया है।

३. दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः॥ (योग० १.३१)

४. योग० २.४९

('देश') में, 'काल' में, फैलाव ('संख्या')[१] के रूप में अनुभव किया जाना चाहिए। ऐसा करने पर दीर्घ (लंबा) श्वास सूक्ष्म (ओछा) होने लगता है ('दीर्घसूक्ष्म:')[२]। इसके उपरांत प्राणायाम की चतुर्थ अवस्था प्राप्त होती है जिसमें बाहरी और भीतरी सांस की प्रक्रिया समाप्तप्राय हो जाती है[३] और ऐसा लगता है मानो सांस पूरी तरह से रुक गया हो – इसे योग में 'स्वत: कुम्भक' की अवस्था कहते हैं।

योगसूत्र में इस बात का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है कि पतंजलि ने बलपूर्वक सांस रोकने के लिए कहा हो, जैसा कि आजकल 'पातंजल योग' के नाम पर ऐसा किया जाता है। यह वास्तव में 'हठयोग'[४] की क्रिया है जिसका 'पातंजल योग' से कोई संबंध नहीं है। पतंजलि के लिए तो 'प्राणायाम' प्राण का आयाम (प्रसार) मात्र ('प्राण-आयाम') है जब कि वह भीतर जाता है अथवा बाहर आता है। इसका प्रवाह हमें इसकी तीनों अवस्थाओं का बोध कराता है – बाहरी, भीतरी तथा थम जाने की। जब दीर्घ श्वास शनै:शनै: सूक्ष्म ('दीर्घ-सूक्ष्म:') हो जाता है तब इन तीनों अवस्थाओं का समग्रता से बोध होने लगता है ('परि-दृष्ट:')। जब यह प्रक्रिया निर्बाध गति से चलती रहती है और श्वास अत्यंत सूक्ष्म हो जाता है, तब प्राणायाम की चतुर्थ अवस्था अनुभूति पर उतरती है जिसमें बाहरी या भीतरी श्वसनक्रिया पूर्णतया गतिरहित हो जाती है।

---

१. यहां 'संख्या' शब्द की व्याख्या 'गणना' के अर्थ में नहीं, अपितु 'अवधि' (फैलाव) के अर्थ में करनी चाहिए। बहुत संभावना है कि यह शब्द पालि भाषा के 'सङ्खत' शब्द को ध्वनित करता हो जो इस भौतिक जगत की समग्र गणनीय और परिमेय संवृतियों के लिए प्रयुक्त होता है। श्वास के विस्तार या संक्षेप की अवधि के प्रति सतत सजगता श्वास के सूक्ष्मतर होने में कैसे कारण बनती है जब तक कि साधक उपेक्षा (समताभाव) में स्थिर न हो जाय – यह आगे किसी अनुच्छेद में समझाया गया है।

२. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभि: परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्म:॥ (योग० २.५०)

३. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थ:॥ (योग० २.५१)

४. देखिए – 'प्रेक्टिकल योग – एन्शेंट एण्ड माडर्न' द्वारा अ० ई० वुड (पृष्ठ १२१)

इस संदर्भ में योगसूत्र वुद्ध की शिक्षा के काफी निकट है। वुद्ध ने भी नैसर्गिक श्वास के प्रवाह में किसी प्रकार के हस्ताक्षेप का समर्थन नहीं किया है। वुद्ध केवल श्वसन की नैसर्गिक प्रक्रिया के प्रति सजग वने रहने की अनुशंसा करते हैं जिसके परिणामस्वरूप लंवा श्वास, शनैःशनैः, ओछे-से-ओछा होकर उस अवस्था को प्राप्त हो जाता है जहां साधक को भिन्न-भिन्न अवधि के लिए 'कुंभक'[१] का स्वतः ही अनुभव होने लगता है। कुंभक की यह अवस्था नैसर्गिक रूप से एवं स्वतः ही प्राप्त होती है और इसमें श्वास को वलपूर्वक रोकने का कोई भी प्रयास नहीं किया जाता है जैसा कि 'हठयोग' में विधान है।

वुद्ध द्वारा अनुशंसित 'आनापानस्सति' (श्वास-प्रश्वास के प्रति जागरूकता) का अभ्यास चित्त की एकाग्रता और चारों प्रकार के ध्यान ('झान') प्राप्त करने के लिए एक अत्यावश्यक उपक्रम है। इसका विशद वर्णन पालि ग्रंथ 'पटिसम्भिदामग्गो' में 'आनापानस्सतिकथा' शीर्षक के अंतर्गत किया गया है। इसमें वतलाया गया है कि साधक दीर्घ श्वास अपने भीतर लेता है जो इसके फैलाव से मालूम पड़ता है ('अद्धान-सङ्खाते')। ऐसे

१. 'सञ्ञावेदयितनिरोध' की अवस्था में (अर्थात, जहां संज्ञा और संवेदनाएं समाप्त हो जाते हैं) श्वसन-क्रिया पूर्ण रूप से अवरुद्ध हो जाती है। एक बार सम्यकसंवोधिप्राप्त साध्वी धम्मदिन्ना ने उपासक विशाख को समझाया था कि 'सञ्ञावेदयितनिरोध' की अवस्था में पहुँचने पर सबसे पहले वाणी की क्रियाएं रुक जाती हैं, तव शरीर की और अंततः मन की। साध्वी ने आगे समझाया कि 'वाणी की क्रिया' किसी विषय या वस्तु पर चित्त का प्रथम संपर्क (प्रतिघात) अथवा उस विषय या वस्तु में इसका विचरण होना है, 'शरीर की क्रिया' आश्वास-प्रश्वास हैं, और 'मन की क्रिया' होती है संज्ञा तथा संवेदनाएं। साध्वी ने यह भी वतलाया कि इन्हें इस रूप में ही क्योंकर समझना होता है। देखिए -
तयो मे, आवुसो विसाख, सङ्खारा - कायसङ्खारो, वचीसङ्खारो, चित्तसङ्खारो।.........अस्सासपस्सासा खो, आवुसो विसाख, कायसङ्खारो, वितक्कविचारा वचीसङ्खारो, सञ्ञा च वेदना च चित्तसङ्खारो। सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जन्तस्स खो, आवुसो विसाख, भिक्खुनो पठमं निरुज्झति वचीसङ्खारो, ततो कायसङ्खारो, ततो चित्तसङ्खारो।
(म० नि० १.४६३)

ही वह दीर्घ श्वास वाहर लेता है जो फैलाव से विदित होता है। वह दीर्घ श्वास भीतर लेता है और वाहर भी जो इनके फैलाव से मालूम होता रहता है। इससे 'छन्द' (उत्साह) जागता है और पहले से ओछा होता जाता है। ऐसा अभ्यास जारी रखने से प्रमोद ('पामोज्ज') जागता है और श्वास और अधिक सूक्ष्म हो जाता है। इस प्रक्रिया को जारी रखने से चित्त लंबे श्वासों-प्रश्वासों से किनारा कर लेता है और उपेक्षा ('उपेक्खा') स्थापित होने लगती है[१]। आश्वास-प्रश्वास ओछे होने पर इन्हें संक्षिप्तता (इत्तर-सङ्खाते) से जाना जाता है। इसमें भी प्रक्रिया जारी रखने से, क्रमशः, होते हैं – उत्साह, प्रमोद – और चित्त के ओछे आश्वास-प्रश्वास से किनारा कर लेने पर स्थापित होती है– उपेक्षा[२]। 'अन्धान-सङ्खाते' और 'इत्तर-सङ्खाते' – इन दो शव्दों का प्रयोग जो सांस के फैलाव की ओर संकेत करता है (चाहे विस्तार को लेकर या संक्षेप को लेकर) अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इनसे पतंजलि के योगसूत्र (२.५०) में प्रयुक्त हुए 'सङ्ख्या' शव्द का वास्तविक आशय प्रकट होता है।

● ध्यान के विपय -

पतंजलि चित्त को ध्यान में स्थिर करने के लिए कुछ विपयों को इंगित करने के पश्चात अंत में कहते हैं कि विकल्प के रूप में जिज्ञासु साधक अपनी रुचि का कोई भी विपय ध्यान के लिए चुन सकता है ('यथाभिमतध्यानाद् वा')[३]। पतंजलि गुह्य उच्चारण 'ओ३म्' की आवृत्ति इसके अर्थ की जानकारी के साथ किये जाने की भी अनुशंसा करते हैं[४]।

---

१. दीघं अस्सासं अद्धानसङ्खाते अस्ससति, दीघं पस्सासं अद्धानसङ्खातं पस्ससति, दीघं अस्सासपस्सासं अद्धानसङ्खाते अस्ससतिपि पस्ससतिपि।.........उपेक्खा सण्ठाति। (पटि० म० १६६)

२. रस्सं अस्सासं इत्तरसङ्खाते अस्ससति, रस्सं पस्सासं इत्तरसङ्खाते पस्ससति, रस्सं अस्सासपस्सासं इत्तरसङ्खाते अस्ससतिपि पस्ससतिपि।.........उपेक्खा सण्ठाति। (पटि० म० १६९)

३. योग० १.३५-३९

४. योग० १.२७-२८

वुद्ध की शिक्षा में ध्यान के लिए चालीस विषयों को गिनाया गया है जिनमें से श्वास-प्रश्वास के प्रति पूर्ण जागरूकता ('आनापानस्सति')[१] एक है। वुद्ध ने ध्यान के लिए इसको वहुत लाभकारी माना है। उन्हीं के शब्दों में 'जब इसे भावित कर इसका खूब अभ्यास किया जाता है तब स्मृतिप्रस्थान ('सतिपट्ठान') सुदृढ हो जाता है। जब सतिपट्ठान को भावित कर इसका अभ्यास किया जाता है तब यह बोधि के सात अंगों ('बोज्झंगों') को परिपुष्ट कर देता है। जब इन बोज्झंगों को भावित कर इनका अभ्यास किया जाता है तब विद्या द्वारा विमुक्ति ('विज्जाविमुक्ति')[२] का परिपाक हो जाता है।' फिर भी इस बात का प्रावधान रखा गया है कि कोई व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुकूल ध्यान के किसी अन्य विषय पर भी काम कर सके।

किंतु वुद्ध ने पतंजलि की भांति ध्यान के लिए शब्दोच्चारण का कभी समर्थन नहीं किया[३]।

● 'समाधि' की अवस्थाओं का विकास –

पतंजलि ने समाधि की विभिन्न अवस्थाओं का वर्गीकरण प्रत्येक अवस्था से संवद्ध सजगता की तीव्रता के अनुसार किया है। पतंजलि समाधि के दोनों वर्गों में भी भेद करते हैं। प्रथम वर्ग में वे समस्त यौगिक अवस्थाएं आ जाती हैं जिनका संबंध अंतर्दृष्टि ('प्रज्ञा') से है। दूसरे वर्ग में वे अवस्थाएं हैं जिनका कोई वस्तुनिष्ठ आधार नहीं है और जो अंतर्दृष्टि ('प्रज्ञा') से भी परे हैं।

---

१. ....एवं सोळसवत्थुकं आनापानस्सतिकम्मट्ठानं निद्दिट्ठं.....। (विसुद्धि० १.२१५)

२. "आनापानस्सति, भिक्खवे, भाविता वहुलीकता महप्फला होति महानिसंसा। आनापानस्सति, भिक्खवे, भाविता वहुलीकता चत्तारो सतिपट्ठाने परिपूरेन्ति। चत्तारो सतिपट्ठाना भाविता वहुलीकता सत्त बोज्झङ्गे परिपूरेन्ति। सत्त बोज्झङ्गा भाविता वहुलीकता विज्जाविमुत्ति परिपूरेन्ति।" (म० नि० ३.१४७)

३. योग० १.२८

पतंजलि ने समाधि के प्रथम वर्ग को 'सम्प्रज्ञात'[१] नाम दिया है, अर्थात वे अवस्थाएं जो अंतर्दृष्टि से संयुक्त हों। इनका भी निम्नांकित चार श्रेणियों में विभाजन किया है: -

१. 'वितर्कानुगत': इसके अंतर्गत चित्त का किसी विषय से प्रथम संपर्क (प्रतिघात) होता है।

२. 'विचारानुगत': इसके अंतर्गत चित्त का उस विषय में विचरण होता है।

३. 'आनंदानुगत': इसके अंतर्गत सुख अथवा आनंद की अनुभूति होती रहती है।

४. 'अस्मितानुगत': इसके अंतर्गत अस्मिता का भाव बना रहता है।

पतंजलि ने दूसरे वर्ग की समाधि के दो चरण बतलाये हैं। इनमें से प्रथम चरण को कोई नाम न देकर केवल 'अन्य'[२] कहा है। इसका निहित अर्थ यह प्रतीत होता है कि यह (अंतर्दृष्टि से संयुक्त ज्ञान वाली) 'सम्प्रज्ञात'[३] समाधि से परे की अवस्था है। दूसरे चरण की समाधि को पतंजलि ने 'धर्ममेघ'[४] नाम दिया है जो मुक्ति के पूर्व की परिपक्व अवस्था है।

मुक्ति की खोज में लगे हुए साधक को निम्न अवस्थाएं प्राप्त करना आवश्यक है: -

(क) 'समापत्ति' की वह अवस्था जिसमें वितर्क अथवा विचार बलशाली हों ('सवितर्का', 'सविचारा')।

---

१. वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात्सम्प्रज्ञातः॥ (योग० १.१७)

२. विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः॥ (योग० १.१८)

३. इसमें अवचेतन में कुछ संस्कार शेष बचे रहते हैं। इस मामले में इसकी तुलना बुद्ध की शिक्षा के अंतर्गत सोतापन्न की अवस्था लाने वाली समाधि से की जा सकती है। उसमें भी चेतना की उच्च भूमियों के थोड़े-से संस्कार बचे रहते हैं जिनका अर्हत अवस्था प्राप्त करने के लिए उन्मूलन करना होता है।

४. प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः॥ (योग० ४.२९)

(ख) 'समापत्ति' की वह अवस्था जिसमें वितर्क अथवा विचार न हों (निर्वितर्का, निर्विचारा)।

निर्विचार समाधि की उप-अवस्थाएं हैं:

- समाधि जिसमें सुख अथवा आनंद की अनुभूति होती हो; और
- समाधि जिसमें अहंकार ('अस्मिता') का भाव बना रहता हो।

(ग) समाधि की वह अवस्था जहां अंतर्दृष्टि (प्रज्ञा) सक्रिय हो; और

(घ) समाधि की वह अवस्था जहां 'प्रज्ञा' भी दब जाती हो (और, परिणामस्वरूप, समस्त मानसिक प्रक्रियाएं भी पूर्णतया निरुद्ध हो जाती हों)।

इनमें से अंतिम चरण की समाधि को 'निर्बीज समाधि'[1] कहा गया है, जबकि शेष को 'सबीज समाधि'[2]। 'सबीज' का निहित अर्थ है अवचेतन में 'संस्कार-निर्माण' की अंतःशक्ति से संयुक्त, जबकि 'निर्बीज समाधि' की अवस्था में अवचेतन में संस्कार-निर्माण की कोई संभावना नहीं होती है।

बुद्ध की शिक्षा के अनुसार 'सबीज' समाधि वह होगी जिसमें अभी भी चित्त में प्रच्छन्न पूर्वाग्रह ('अनुसय-किलेस') विद्यमान रहते हैं। जब इस प्रकार के सभी प्रच्छन्न पूर्वाग्रह समाप्त हो जाते हैं, तब साधक 'निर्बीज' समाधि में पहुंच जाता है; क्योंकि इस अवस्था में कोई भी नये संस्कार नहीं बन सकते।

बुद्ध ने समाधि को दस स्थूल वर्गों[3] में विभाजित किया है पर इनमें से किसी को भी 'सबीज' या 'निर्बीज' नाम नहीं दिया है। तो भी, सैद्धांतिक दृष्टि से इनकी तुलना, क्रमशः, 'लोकिय' (सांसारिक) एवं 'लोकुत्तर' (अधिसांसारिक) समाधियों से की जा सकती है। 'लोकुत्तर समाधि' का लक्ष्य निर्वाण ('निब्बान') की प्राप्ति है। कोई भी अन्य समाधि, चाहे कितनी उच्च कोटि की क्यों न हो, केवल 'लोकिय' (सांसारिक) ही होती है।

इस पद्धति में निम्नांकित आठ अवस्थाएं ('समापत्तियां') क्रमवार समाधियुक्त ध्यान से आती हैं:

१. प्रथम ध्यान

२. द्वितीय ध्यान

---

१. तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः॥ (योग० १.५१)

२. ता एव सबीजः समाधिः॥ (योग० १.४६)

३. पटि० म० ४३

३. तृतीय ध्यान
४. चतुर्थ ध्यान
५. पंचम ध्यान (अनंत आकाश के क्षेत्र में)
६. षष्ठ ध्यान (अनंत चेतना के क्षेत्र में)
७. सप्तम ध्यान (अनंत शून्यता के क्षेत्र में)
८. अष्टम ध्यान (न-संज्ञा-न-असंज्ञा के क्षेत्र में)[1]

इन ध्यानों के आगे समाधि की वह अवस्था आती है जो 'सञ्ञा-वेदयित-निरोध' कहलाती है, अर्थात जहां संज्ञा और संवेदनाएं पूर्णतया समाप्त हो जाती हैं। इस अवस्था में साधक को परम सुख और परम शांति ('परमं सुखं, सन्तिवरपदं') की अनुभूति होती है। बुद्ध के अनुसार यह श्रेष्ठतम समाधि है जिसमें समस्त कषाय और मलिनताएं ('आस्रव') क्षीण हो जाते हैं ('परिक्खीणा')[2]। यह एकमात्र समाधि है जो 'लोकुत्तर' (अधिसांसारिक) है; अन्य सभी 'लोकिय'[3] (सांसारिक) होती हैं।

बुद्ध के अनुसार केवल प्रथम चार ध्यानों के अनुभव से भी 'निरोध-समापत्ति' की अवस्था प्राप्त कर लेना संभव है। अंतर्दृष्टि ('पञ्ञा') का सहारा लेकर तृतीय ध्यान तक पहुँचते-पहुँचते किसी साधक के लिए अनित्यता की सच्चाई को साफ-साफ अनुभव पर उतार पाना (अर्थात,

---

१. पालि आगम में ये कहलाते हैं – पठम झान, दुतिय झान, ततिय झान, चतुत्थ झान, आकासानञ्चायतन समाधि, विञ्ञाणञ्चायतन समाधि, आकिञ्चञ्ञायतन समाधि तथा नेवसञ्ञानासञ्ञायतन समाधि।
२. भिक्खु सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति। पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा परिक्खीणा होन्ति। (म० नि० १.२७१)
३. बुद्ध ने वर्णन किया है कि लोकोत्तर अवस्था में वह भीतर से सचेत थे परंतु उन्होंने न तो देवताओं के राजा इंद्र का बरसना देखा, न छपछपाना; और न ही विद्युत का चमकना और गड़कना!
देखिए – अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, सन्तेन वत भो पब्बजिता विहारेन विहरन्ति, यत्र हि नाम सञ्ञी समानो जागरो देवे वस्सन्ते गळगळायन्ते विज्जुल्लतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया नेव दक्खति न पन सद्दं सोस्सति! (दी० नि० २.१९३)

चित्त-और-शरीर के प्रपंच में उदय-व्यय की सच्चाई का दर्शन कर पाना) संभव हो जाता है। इस ध्यान की चरम अवस्था में साधक 'सति' और 'सम्पजञ्ञ' (अर्थात, सजगता और अनित्यता के सतत और संपूर्ण बोध) में दृढ़मूल हो जाता है। इन क्षमताओं के साथ चतुर्थ ध्यान को प्राप्त करने के मार्ग में जुटे रहने से ध्यान की चरम अवस्था में साधक 'निरोध' अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

ध्यानावस्था के अनुभव –

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, योगसूत्र में दो प्रकार की समाधियों का वर्णन मिलता है। प्रथम, अंतर्दृष्टि वाली (जिसे 'सम्प्रज्ञात' कहा गया है) और दूसरी 'अन्य,' जो इससे परे की अवस्था है[१]।

पालि भाषा के अनुसार व्याख्या करने पर 'सम्प्रज्ञात' का अर्थ ठहरता है 'सम्पजञ्ञ'-सहित। 'सम्पजञ्ञ' (संस्कृत – 'सम्प्रज्ञान') एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ सामान्यतया 'सुस्पष्ट बोध' किया जाता है; किंतु इससे इसका वास्तविक आशय स्पष्ट नहीं होता है। 'सम्पजञ्ञ' का वास्तविक अर्थ है – 'समस्त शारीरिक और मानसिक क्रियाओं में अनित्यता का सतत बोध होते रहना'[२]। बुद्ध प्रायः इस बात पर बल दिया करते थे कि साधक

---

१. योग० १. १७-१८

२. इसका अर्थ है कि साधक को चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, चबाते, खाते, पीते, रसास्वादन करते, कपड़े पहनते, मल-मूत्र त्यागते और कुछ भी करते समय इनकी सतत एवं संपूर्ण जानकारी बनाये रखनी चाहिए। (दी० नि० २.१६०)
यदि सतत संप्रज्ञान ('सम्पजञ्ञ') से तात्पर्य केवल इतना ही हो कि चलते, खड़े होते, इत्यादि प्रक्रियाओं की पूर्ण जानकारी बनी रहे, तो यह केवल 'सति' (अवधानता, जागरूकता) ही होगी। यदि सतत संप्रज्ञान के अंतर्गत इन गतिविधियों के होते हुए शरीर पर होने वाली संवेदनाओं के उदय-व्यय रूपी लक्षण की जानकारी शामिल रहती है, तो यह वास्तविक संप्रज्ञान होगा क्योंकि उस दशा में प्रज्ञा भी अपनी भूमिका अदा कर रही होगी। बुद्ध चाहते थे कि लोग इस प्रकार के संप्रज्ञान ('सम्पजञ्ञ') का अभ्यास करें।

को क्षणभर के लिए भी[१] अनित्यता का संपूर्ण वोध नहीं खोना चाहिए। वुद्ध ने यह आश्वासन भी दिया था कि जो साधक उनके वतलाये हुए 'विपस्सना' ध्यान का सही अभ्यास 'सम्प्रज्ञान'-पूर्वक, विना किसी व्यवधान के, करता रहेगा ('सम्पजानो'), वह या तो 'अर्हत' अवस्था की उच्चतम स्थिति को प्राप्त कर लेगा, अन्यथा इससे पहले की उच्चतम स्थिति 'अनागामिता'[२] को प्राप्त करेगा ही।

इस प्रकार वुद्ध की शिक्षा के अनुसार चित्त-और-शरीर के प्रपंच में अनित्यता का सतत, संपूर्ण वोध, सम्यकसंवोधि प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है। ऐसा करते हुए साधक अपने भीतर जागने वाली संवेदनाओं को जानता है, उनकी स्थिति को भी और उनके अवसान को भी। इसी प्रकार वह अपने भीतर विषयों या पदार्थों से चित्त के प्रारंभिक संपर्क (प्रतिघात) को जानता है, उनकी स्थिति को भी और उनके अवसान को भी। वह अपने भीतर पूर्व संस्कारों से रंजित संज्ञा के उदय को जानता है, उसकी स्थिति को भी और उसके अवसान को भी[३]।

जैसा कि पूर्व-पृष्ठों में दर्शाया जा चुका है योगसूत्र में 'अभिभव-प्रादुर्भावौ'[४] (विलोप और उत्पत्ति); 'क्षयोदयौ'[५] (क्षय और उदय); 'शान्तोदितौ'[६] (तिरोभाव और आविर्भाव) शव्दों का प्रयोग मिलता है जो कि वुद्ध की शिक्षा में प्रयुक्त हुए शव्द 'उदयव्वय' (उदयव्यय) अथवा

---

१. यतो च भिक्खु आतापी, सम्पजञ्ञं न रिञ्चति। (सं० नि० २.२.२६०)

२. दी० नि० २.४०४

३. इध, भिक्खवे, भिक्खुनो विदिता वेदना उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। विदिता वितक्का उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। विदिता सञ्ञा उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। (सं० नि० ३.१.४०१)

४. व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः॥ (योग० ३.९)

५. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः॥ (योग० ३.११)

६. ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः॥ (योग० ३.१२)

'उप्पादवय' (उत्पादव्यय) का आशय ही स्पष्ट करते हैं। किंतु इन शब्दों का प्रयोग संवेदनाओं ('वेदना') से नहीं जोड़ा गया है जो कि सारी चैतसिक अवस्थाओं का संगम[1] हैं। समूचे योगसूत्र में 'वेदन' शब्द का प्रयोग केवल एक ही वार हुआ है, और वह भी नितांत भिन्न संदर्भ में[2]। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि योगसूत्र के रचयिता चित्त-और-शरीर के प्रपंच में संवेदनाओं के स्तर पर अनित्यता के निरीक्षण की अतिमहत्त्वपूर्ण कड़ी के संबंध में अनभिज्ञ रहे, जो कि पूर्ण मुक्ति के मार्ग में एक भारी कमी है।

निःसंदेह, योगसूत्र में 'निर्विचार समाधि'[3] की अवस्था में (अर्थात, किसी विषय या वस्तु में विचरण न करते हुए) सत्य की प्रतीति कराने वाली अंतर्दृष्टि ('प्रज्ञा') के उदय होने का उल्लेख है किंतु, जैसा कि ऊपर वतलाया जा चुका है, यह ज्ञान संवेदनाओं के स्तर पर उदय-व्यय के प्रपंच की गहराई से अभिव्यक्त नहीं करता है। इसका युक्तिसंगत कारण यही हो सकता है कि योगसूत्र के रचयिता ने इस अनित्यता की सच्चाई का स्वयं अनुभव नहीं किया होगा, अतः इस अनुभव के अभाव में 'सत्य' के वारे में उन्होंने अपनी कोई अलग ही धारणा वना रखी होगी।

वुद्ध की शिक्षा में चित्त की 'भावना' (विकास) के लिए दो मार्ग सुझाये गये हैं: 'प्रशांति' (या 'समथ') और 'अंतर्दृष्टि' (या 'विपस्सना'), जो कि, क्रमशः, एकाग्रता ('समाधि'), और 'प्रज्ञा' ('पञ्ञा') के समरूप हैं। 'प्रशांति' (पालि – 'पस्सद्धि', संस्कृत – 'प्रश्रब्धि') चित्त की ऐसी अविकल, शांत और प्रांजल अवस्था है जो कि एकांतिक एकाग्रता या 'समाधि' द्वारा प्राप्त होती है। 'अंतर्दृष्टि' (या 'विपस्सना') ऐसी अद्भुत, पैनी वोधशक्ति है जो अस्तित्व-प्राप्त सभी चैतसिक और भौतिक प्रपंच में विद्यमान अनित्यता, असंतोष और अवैयक्तिकता को प्रत्यक्ष ध्यानावस्था द्वारा अनुभव कराती

१. वेदना समोसरणा सब्बे धम्मा। (अ० नि० ६.१०.५८)
२. ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते॥ (योग० ३.३६)
३. योग० १.४७-४८

है। 'अंतर्दृष्टि' के माध्यम से साधक विशुद्धि और अंतिम मुक्ति की अधिसांसारिक अवस्थाओं में पैठता है[१]।

'अंतर्दृष्टि' तव तक संभव नहीं होती जव तक साधक शरीर पर होने वाली संवेदनाओं के स्तर पर अनित्यता की सच्चाई को अनुभव नहीं करने लग जाता। शारीरिक संवेदनाएं उस संधि को प्रकट करती हैं जहां समग्र चित्त-और-शरीर अनित्यता के प्रपंच के रूप में प्रत्यक्ष रूप से पहचान में आने लगते हैं जो मुक्ति की ओर ले जाते हैं। इसके अभाव में साधक 'प्रशांति' (या 'समथ') के क्षेत्र में ही वना रहता है। 'प्रशांति' से चित्त का विकास होता है और इंद्रियलिप्सा का परित्याग, जवकि 'अंतर्दृष्टि' (या 'विपस्सना') से होता है प्रज्ञा का विकास और अज्ञान का निवारण[२]।

जो साधक योगसूत्र के सिद्धांतों के अनुरूप साधना में रत रहते हैं वे संवेदनाओं के स्तर तक अपने चित्त का भेदन नहीं कर पाते हैं। यह प्रक्रिया वुद्ध की शिक्षा के अंतर्गत तृतीय ध्यान ('ततियज्झान') से आगे अपनी चरम अवस्था में आ जाती है। फलतः योगसूत्र के अनुसार कार्य करने वाले साधक, तृतीय ध्यान की चरम अवस्था तक नहीं पहुँच पाते और 'प्रशांति' के क्षेत्र तक ही सीमित रह जाते हैं जो स्थिति साधक को अधिक-से-अधिक इंद्रियलिप्सा के परित्याग में लाभ पहुँचाती है। यह कल्पना नहीं की जा

---

१. ज्यों ज्यों मन शुद्ध होता जाता है, प्रज्ञा भी परिष्कृत होती जाती है। चित्त-विशुद्धि का मार्ग सभी संस्कारों की अनित्यता, दुःखबोधना तथा असारता की प्रज्ञापरक अनुभूति पर आधारित है।
देखिए –
सब्बे सङ्खारा अनिच्चाति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥
सब्बे सङ्खारा दुक्खाति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥
सब्बे धम्मा अनत्ताति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥ (थेरगा० ६७६-६७८)

२. समथो, भिक्खवे, भावितो कमत्थमनुभोति? चित्तं भावीयति। चित्तं भावितं कमत्थमनुभोति? यो रागो सो पहीयति। विपस्सना, भिक्खवे, भाविता कमत्थमनुभोति? पञ्ञा भावीयति। पञ्ञा भाविता कमत्थमनुभोति? या अविज्जा सा पहीयति। (अ० नि० १.२.३२)

सकती कि ऐसे साधक यथार्थ में अपने 'अज्ञान' ('अविज्जा') के अंधेरे से वाहर आ पाते हों, यद्यपि इस वारे में वे दावा अवश्य करते हैं। सच्चाई यह है कि 'अज्ञान' के पर्दे से वाहर आने के लिए साधक को सतत रूप से संवेदनाओं की अनित्यता का वोध (पालि- 'सम्पजञ्ञ', संस्कृत- 'सम्प्रज्ञान') होना ही चाहिए। इस शव्द की विस्तृत व्याख्या इस पुस्तक के 'अनुलग्नक' में की गयी है।

● 'योग' से एक कदम आगे जाने की आवश्यकता –

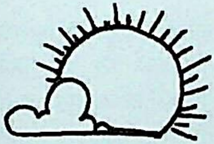
पतंजलि के अनुसार 'योग' का लक्ष्य है 'चित्तवृत्तिनिरोध' की अवस्था का साक्षात्कार करना। वुद्ध की शिक्षा का लक्ष्य है 'चित्तनिरोध' की अवस्था का साक्षात्कार करना, अर्थात ऐसी अवस्था में से गुजरना जहां चित्त ही निरुद्ध हो जाय।

वुद्ध की शिक्षा में 'चित्त', 'विञ्ञाण' तथा 'मनो' समानार्थी शव्द हैं। इस शिक्षा में यह स्पष्ट रूप से वतलाया गया है कि 'विञ्ञाण' का निरोध किस क्रम से होता है। क्रम इस प्रकार है – 'अविद्या के निरोध से 'संस्कारों' का निरोध, और 'संस्कारों' के निरोध से 'विञ्ञाण' का निरोध[1]। पतंजलि ने कहीं भी इस वात का संकेत नहीं किया है कि 'विञ्ञाण' (अर्थात, चित्त) भी निरुद्ध हो सकता है। अतः आवश्यकता रहती है 'योग' से एक कदम आगे जाने की[2]।

---

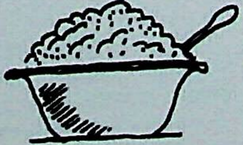
१. "इति इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झति, यदिदं - अविज्जानिरोधा सङ्खारनिरोधो, सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो..."(उदा० २)

२. इस विपय पर अ० ई० वुड के विचार ध्यान देने योग्य हैं:
"परंपरागत योग व्यक्ति के अहं को शांत कर देता है, किंतु इसके वर्चस्व को नहीं। इस अंतिम, किंतु अनिवार्य, कृत्य के निष्पादन हेतु 'योग' से भी एक कदम आगे जाना जरूरी है। स्वयं में अहं अत्यधिक चालाक है, इसके दांव-पेंच इतने चतुराईयुक्त और कपटपूर्ण होते हैं कि एक औसत दर्जे का योगी इसके छलावे में आकर विश्वास कर लेता है कि उसने अपने अहं को अपने अधीन कर लिया है जवकि सच्चाई यह होती है कि (यह अपना सिर उठाने के लिए) अनुकूल समय की वाट जोहता रहता है। गौतम वुद्ध को निर्वाण के परम पथ पर चलने के लिए यह कदम उठाना पड़ा।"
(प्रेक्टिकल योग – एन्शेंट एण्ड माडर्न)



खंड ५

खीर का स्वाद उसके सेवन में



योगसूत्र के अनुसार 'धर्ममेघ' समाधि प्राप्त होने पर सभी प्रकार के दुःख ('क्लेश') और 'कर्म' समाप्त हो जाते हैं[1]; और प्राथमिक शक्तियां ('गुण') प्रकृति के अनुभवातीत केंद्रबिंदु की ओर सिमटने लगती हैं। यह 'कैवल्य' अवस्था है जहां 'पुरुषतत्त्व' अपने पूर्ण वैभव में होता है[2]। इस अवस्था में योगी जन्म-मरण के भव-चक्र से पूर्णतया मुक्त हो जाता है।

बुद्ध ने भी 'विपस्सना' ध्यानविधि को प्रज्ञप्त किया जिससे चित्त की सारी मलिनताएं जड़ से समाप्त होकर चित्त नितांत निर्मल हो जाता है। इस विधि के व्यावहारिक चरण चारों स्मृतिप्रस्थानों[3] ('चत्तारो सतिपट्ठाना') में निहित हैं। यह इस प्रकार हैं: शरीर का द्रष्टाभाव से सतत निरीक्षण ('कायानुपस्सना'); संवेदनाओं का द्रष्टाभाव से सतत निरीक्षण ('वेदनानुपस्सना'); चित्त का द्रष्टाभाव से सतत निरीक्षण ('चित्तानुपस्सना'); और चित्त में जागने वाले धर्मों का भी द्रष्टाभाव से सतत निरीक्षण ('धम्मानुपस्सना')। बुद्ध की प्रज्ञप्ति है कि ये चारों 'सतिपट्ठान' सत्त्वों की विशुद्धि, शोक और क्रंदन का विनाश, दुःख और दौर्मनस्य का अवसान, सत्य की प्राप्ति और निर्वाण का साक्षात्कार - इन सब के लिए अकेला मार्ग[4] है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिस किसी साधक ने इनमें से किसी एक ध्यानविधि का अनुसरण किया तो क्या वह अपना लक्ष्य प्राप्त कर पाया? स्पष्टतया इसका एक ही उत्तर हो सकता है कि खीर का स्वाद उसके सेवन से ही पता चल सकता है। यद्यपि योगसूत्र की विधि का अनुसरण करने वाले किसी भी साधक की ऐसी घोषणा नहीं मिलती है कि उसने योगसूत्र में

---

१. ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः॥ (योग० ४.३०)
२. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति॥ (योग० ४.३४)
३. 'सतिपट्ठान' का अर्थ है 'जागरूकता को संस्थापित करना'।
४. 'एकायनो अयं, भिक्खवे, मग्गो सत्तानं विसुद्धिया, सोकपरिदेवानं समतिक्कमाय, दुक्खदोमनस्सानं अत्थङ्गमाय, ञायस्स अधिगमाय, निब्बानस्स सच्छिकिरियाय - यदिदं चत्तारो सतिपट्ठाना।' (दी० नि० २.३७३)

वर्णित प्रकार से साधनाभ्यास करते हुए 'कैवल्य' अवस्था को प्राप्त कर लिया, जबकि बुद्ध की शिक्षा का अनुसरण किये हुए अनेकानेक साधक उस उच्चतम अवस्था को प्राप्त हुए जहां से उनको सांसारिक अवस्था में पुनः लौटना नहीं था; और उन्होंने अपनी इस उपलब्धि की घोषणा भी की। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

(क) **उत्तरपाल** : इस स्थविर की घोषणा है कि मेरी सारी कामनाएं छूट गयी हैं; सारे भव विदीर्ण हो गये हैं; आने वाले जन्मों का सिलसिला नष्ट हो गया है। अब मेरे लिए कोई नया भव नहीं है[१]।

(ख) **न्हातक मुनि** : इस स्थविर का कहना है कि मैंने पांचों स्कंधों को पूरी तरह से जान लिया है। अब ये हैं, पर जड़-कटे समान। दुःखों का क्षय प्राप्त हो गया है। अब मेरे लिए कोई नया भव नहीं है[२]।

(ग) **मधुदायक** : इस स्थविर की घोषणा है कि मैं मध्यम, उच्च और निकृष्ट- सारे भवों के पार चला गया हूं। आज मेरे आस्रव (चित्तमल) क्षीण हो चुके हैं। अब मेरे लिए कोई नया भव नहीं है[३]।

(घ) **हेमकत्थ** : यह स्थविर कहता है कि यह मेरा पिछला, अंतिम भव है। मेरे सारे आस्रव पूरी तरह नष्ट हो गये हैं। अब मेरे लिए कोई नया भव नहीं है[४]।

(ङ) **मंचदायक** : इस स्थविर का उद्घोष है कि मेरे सभी क्लेश जल-भुन गये हैं; सारे भव जड़ से उखड़ गये हैं; सारे आस्रव पूरी तरह क्षीण हो गये हैं। अब मेरे लिए कोई नया भव नहीं है[५]।

१. सब्बे कामा पहीना मे, भवा सब्बे पदालिता।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो॥ (थेरगा० २५४)
२. पञ्चक्खन्धा परिञ्ञाता, तिट्ठन्ति छिन्नमूलका।
दुक्खक्खयो अनुप्पत्तो, नत्थि दानि पुनब्भवो॥ (थेरगा० ४८०)
३. मज्झे महन्ते हीने च, भवे सब्बे अतिक्कमिं।
अज्ज मे आसवा खीणा, नत्थि दानि पुनब्भवो॥ (अप० थेर० १.४०.३४८)
४. इदं पच्छिमकं मय्हं, चरिमो वत्तते भवो।
सब्बासवा परिक्खीणा, नत्थि दानि पुनब्भवो॥ (अप० थेर० १.४१.२२०)
५. किलेसा झापिता मय्हं, भवा सब्बे समूहता।
सब्बासवा परिक्खीणा, नत्थि दानि पुनब्भवो॥ (अप० थेर० २.४०.४१६)

(च) **एकासनिय** : यह स्थविर दृढ़तापूर्वक कहता है कि मेरे भीतर की तीनों (प्रकार की) अग्नि शांत हो गयी है; सारे भव जड़ से उखड़ गये हैं। मैं सम्यकसंबुद्ध के शासन में अंतिम देह धारण किये हुए हूं[1]।

(छ) **भद्दालि** : यह स्थविर जयघोष करता हुआ कहता है कि यह मेरा अंतिम भव है। मैं समस्त मलिनताओं से मुक्त होकर उस हाथी की तरह हूं जिसने अपने सारे बंधन तोड़ दिये हैं[2]।

(ज) **कालुदायी** : यह स्थविर घोषणा करता है कि मेरे समस्त राग, द्वेष, भ्रम, ईर्ष्या और अहंभाव तिरोहित हो गये हैं। मैंने अपनी समस्त मलिनताओं को जड़ों तक जानकर उनका उन्मूलन कर दिया है, और अब मैं नीचे की ओर ले जाने वाली सभी वृत्तियों से मुक्त हूं[3]।

(झ) **उग्ग** : यह स्थविर निश्चयपूर्वक कहता है कि जो भी कर्म - कम या बेशी - मैंने किया था, वह सारा पूरी तरह नष्ट हो गया है। अब मेरे लिए कोई नया भव नहीं है[4]।

(ञ) **एकपिंडपातदायिका** : यह स्थविरी हर्ष के साथ कहती है कि मैं समस्त बंधनों से मुक्त हूं; मेरी उपाधियां दूर हो गयी हैं; सारे आस्रव पूरी तरह नष्ट हो गये हैं। अब मेरे लिए कोई नया भव नहीं है[5]।

(ट) **उदकदायिका** : यह स्थविरी उन्मुक्तभाव से कहती है कि आज मेरा मन विशुद्ध है; मन से पाप दूर हो चुका है; सारे आस्रव क्षीण हो चुके हैं। अब मेरे लिए कोई नया भव नहीं है[6]।

---

1. तिविधग्गी निब्बुता मय्हं, भवा सब्बे समूहता।
धारेमि अन्तिमं देहं, सम्मासम्बुद्धसासने॥ (अप० थेर० १.१२.३७)

2. इदं पच्छिमकं मय्हं, चरिमो वत्तते भवो।
नागो व बन्धनं छेत्वा, विहरामि अनासवो॥ (अप० थेर० १.४२.२८)

3. रागो दोसो च मोहो च, मानो मक्खो च धंसनो।
सब्बासवं परिञ्ञाय, विहरामि अनासवो॥ (अप० थेर० १.४.६१)

4. यं मया पकतं कम्मं, अप्पं वा यदि वा बहुं।
सब्बमेतं परिक्खीणं, नत्थि दानि पुनब्भवो॥ (थेरगा० ८०)

5. सब्बबन्धनमुत्ताहं, अपेता मे उपादिका।
सब्बासवपरिक्खीणा, नत्थि दानि पुनब्भवो॥ (अप० थेरी० २.१.५५)

6. विसुद्धमनसा अज्ज, अपेतमनपापिका।
सब्बासवपरिक्खीणा, नत्थि दानि पुनब्भवो॥ (अप० थेरी० २.१.१२६)

इनके अतिरिक्त बड़ी संख्या में अन्य साधकों ने भी इसी स्वर में घोषणा करते हुए कहा है कि सम्यकसंबुद्ध के शासन में हमारी उच्चतम उपलब्धियां संभव हुई हैं। उदाहरणस्वरूप, भिक्षुणी पटाचारा ने अपनी मुक्ति के अनुभव की तुलना जलती हुई दीपशिखा के बुझ जाने से की है[१]। सुमेधा ने छहों प्रकार के उच्चतर ज्ञान के साक्षात्कार के बारे में बतलाया है[२]। किसागोतमी ने निर्वाण के साक्षात्कार के बारे में बखान किया है[३]। खेमा ने सभी दुःखों से मुक्त होने के संबंध में कहा है[४]।

१. पदीपस्सेव निब्बानं, विमोक्खो अहु चेतसो। (थेरीगा० ११६)
२. छ अभिञ्ञा सच्छिकता, अग्गफलं सिक्खमानाय। (थेरीगा० ५१८)
३. निब्बानं सच्छिकतं, धम्मादासं अवेक्खिहं। (थेरीगा० २२२)
४. पमुत्ता सब्बदुक्खेहि, सत्थुसासनकारिका। (थेरीगा० १४४)

सम्पजञ्ञ

पालि भाषा में ऐसे अनेक पारिभाषिक शब्द हैं जिनका सिद्धांत ('*परियत्ति*') और अभ्यास ('*पटिपत्ति*') दोनों क्षेत्रों में बहुत महत्त्व है। ऐसा ही एक शब्द '*सम्पजञ्ञ*' है। यह शब्द बहुधा '*सति*' के साथ प्रयुक्त हुआ पाया जाता है, जैसे '*सति- सम्पजञ्ञं*' अथवा '*सतो च सम्पजानो*' अथवा '*सतो सम्पजानो*'। परिणामतः, इस शब्द की व्यापक व्याख्या सजग बने रहने के अर्थ में हुई है। परिभाषा के अंतर्गत भी इसे '*सतो*'[1] (सजगतापूर्वक) का निकट पर्यायवाची माना गया है जिससे केवल सजगता की प्रखरता का संकेत मिलता है। परंतु अभिधम्म ग्रंथों में इसका भिन्न अर्थ मिलता है। '*विभंग*' तथा '*पुग्गलपञ्ञत्ति*' में '*सम्पजानो*' की निम्न व्याख्या मिलती है:

> "*सम्पजानोति तत्थ कतमं सम्पजञ्ञं? या पञ्ञा पजानना विचयो पविचयो धम्मविचयो सल्लक्खणा उपलक्खणा पच्चुपलक्खणा पण्डिच्चं कोसल्लं नेपुञ्ञं वेभब्या चिन्ता उपपरिक्खा भूरिमेधा परिणायिका विपस्सना सम्पजञ्ञं...........सम्मादिट्ठि - इदं वुच्चति सम्पजञ्ञं*।"
>
> '*सम्पजञ्ञ*' क्या है? प्रज्ञा, बोध, अन्वेषण, गहन अन्वेषण, सत्य का अन्वेषण, पहचान कराने वाली बुद्धि, विवेक, विभेदन, विद्वत्ता, प्रवीणता, कौशल, विश्लेषण, मनन, सूक्ष्म निरीक्षण, उदारता, दूरदर्शिता, मार्गदर्शन, अंतर्दृष्टि, अनित्यता का संपूर्ण बोध, सम्यक दृष्टि ....यह '*सम्पजञ्ञ*' कहलाता है।

इस व्याख्या में संज्ञा शब्दों और रूपकों की बहुलता से यह स्पष्ट हो जाता है कि '*सम्पजञ्ञ*' केवल सजगता नहीं, अपितु प्रज्ञा है। इस व्याख्या की पुष्टि शब्द की व्युत्पत्ति से भी होती है जो कि उपसर्ग '*सं*'[2] और

'*पजानना*'[6] (प्रज्ञापूर्वक जानना) के मेल से बना है। बल्कि इससे गहराई वाली समझ का संकेत मिलता है: जैसे, प्रज्ञापूर्वक ठीक-ठीक समझना अथवा पूरी समझ के साथ समग्रता से जानना। इस संबंध में बुद्ध की देशना केवल सजगता विकसित करने के लिए नहीं है बल्कि प्रज्ञा विकसित करने के लिए भी है। इसीलिए ग्रंथों में उल्लेख है:

> '*सम्पजञ्ञन्ति पञ्ञा*'[7]
> '*सम्पजञ्ञ*' प्रज्ञा है।

अट्ठकथाएं (अर्थकथाएं) 'सम्पजञ्ञ' का अर्थ और अधिक स्पष्ट करती हैं:

> "*सम्मा पकारेहि अनिच्चादीनि जानातीति सम्पजञ्ञं।*"
>
> जो अनित्यता के साथ (दुःख तथा अहंशून्यता) को सम्यक प्रकार से जानता है, वह व्यक्ति प्रज्ञा ('*सम्पजञ्ञ*') से युक्त है[8]।
>
> '*समन्ततो पकारेहि पकतं व सविसेसं जानातीति सम्पजानो*'[9]।
>
> जो समष्टि को प्रज्ञापूर्वक सभी दृष्टिकोण से (क्षण प्रतिक्षण हो रही घटनाओं के साथ) स्पष्ट रूप से समझता है अथवा जो (परमार्थ सत्य को) सुस्पष्ट रूप से समझता है, वह प्रज्ञा ('*सम्पजञ्ञ*') से युक्त है।

बुद्ध ने सदा यही सिखलाया कि प्रज्ञा ('*पञ्ञा*') से तात्पर्य होता है वस्तुओं को अनेकांगी दृष्टि से सही प्रकार से समझना। उन्होंने यह शब्दावलि काम में ली है - '*सम्मा पकारेहि-जाननं*' (अनेक परिप्रेक्ष्यों में, संपूर्णता के साथ जानना); '*समन्ततो पकारेहि-जाननं*' (सब ओर से, प्रकार-प्रकार से जानना जिससे कुछ भी अनजाना न रह जाय):

> '*सम्मा समन्ततो समञ्च पजानन्तो सम्पजानो*'
>
> जो सम्यक प्रकार से, सभी ओर से, प्रज्ञापूर्वक जानता है वह '*सम्पजानो*' कहलाता है।

साधना करने वालों के लिए यह विशेष रूप से आवश्यक है कि वे वस्तुओं के मात्र सतही स्वरूप और बाहरी आवरणों को ही न जानें जो कि

प्रकट (*'सम्मुति सच्च'*) है, वल्कि अंतिम (*'परमत्थ सच्च'*) को भी वास्तविकता के साथ सूक्ष्मरूप से जानें। अभिधम्म के अनुसार चार 'परमत्थ सच्च' (परमार्थ सत्य) हैं - चित्त, चैतसिक, रूप तथा निर्वाण। शेष सभी कुछ 'वोहार सच्च' (व्यवहार सत्य) है जिसे 'सम्मुति सच्च' (संवृति सत्य) भी कहते हैं। जब हम 'मैं', 'तुम', 'नर', 'नारी', 'पशु' सरीखे शब्दों को व्यवहार में लाते हैं तब हम उन इकाइओं के बारे में चर्चा कर रहे होते हैं जो यथार्थतः विद्यमान न होकर केवल नामोद्दिष्ट होती हैं। ये केवल चित्त, चैतसिक तथा रूप पर आधारित प्रपंचमात्र हैं जिन्हें लोक-व्यवहार के लिए ये नाम दिये गये होते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो जगद्व्यवहार असंभव हो जाय। वस्तुतः इनकी कोई सत्ता नहीं है। ये सभी तरंगों के रूप में हैं, केवल 'निव्वान' (निर्वाण) ही तरंगातीत अवस्था है। हर विपश्यी साधक के लिए आवश्यक होता है कि इन अवस्थाओं को स्वानुभूति पर उतारे। और यह कार्य 'सम्पजञ्ञ' (संप्रज्ञान) के आधार पर ही हो सकता है।

किसी साधक के लिए *'सम्पजञ्ञ'* का आशय होना चाहिए - संपूर्ण जानकारी। यह मानवीय प्रक्रियाओं के सभी पहलुओं के बारे में - वे चाहे चैतसिक हों अथवा शारीरिक - अंतर्दृष्टि के रूप में होगा। हमें यह समझना चाहिए कि चित्त का जब कभी किसी विषय से संपर्क होता है, यह भूतकाल के पूर्वाग्रहों के रंगीन चश्मे से उस विषय को विकृत रूप से समझता है और तदनुरूप इसका मूल्यांकन करता है; इसलिए यह अज्ञान, राग अथवा द्वेष की प्रतिक्रिया करता है। इस प्रक्रिया में दुःख ही उत्पन्न होता है क्योंकि इसमें प्रज्ञा का अभाव रहता है।

चित्त शरीर पर प्रतिबिंबित होता रहता है और इस शारीरिक अभिव्यक्ति के कारण ही हम इसके उदय-व्यय के स्वभाव को साफ-साफ समझ पाते हैं। यही कारण है कि *'महासतिपट्ठानसुत्त'* में *'सम्पजञ्ञ'* का प्रसंग *'कायानुपस्सना'* शीर्षक वाले खंड में उठाया गया है जिसमें काया के सूक्ष्म निरीक्षण की आदेशना है। शारीरिक क्रियाओं में अनित्यता की सच्चाई को समझने के लिए हमें उनकी संवेदनाओं (*'वेदना'*) के स्तर पर शरीर

भीतर अनुभव करना आवश्यक है। गहरे अंतर्दर्शी तल पर संवेदनाओं की अनित्यता की सच्चाई हमें अपनी क्षणभंगुरता का बोध कराती है।

इस प्रकार '*सम्पजञ्ञ*' गहरे-से-गहरे स्तर पर हमारी अपनी क्षणभंगुरता का बोध है। यह '*सति*' (स्मृति) का पर्यायवाची न होकर उसका पूरक है।

एक अवसर पर आयुष्मान सारिपुत्त ने निर्वाण की प्राप्ति और दुःख का अंत करने के लिए सारी ग्रंथियों को खोलने वाले दशोत्तर धर्म का उपदेश दिया[९]। इस उपदेश के अंतर्गत उन्होंने भिक्षुओं (साधकों) को बतलाया कि 'सति' (स्मृति) और 'सम्पजञ्ञ' (संप्रज्ञान) – ये दो धर्म बहुत उपकार करने वाले हैं[९]।

अन्यत्र भगवान बुद्ध ने प्रज्ञप्त किया कि यही मेरी 'अनुसासनी' (शिक्षा) है। इसी को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि साधक स्मृतिमान और संप्रज्ञानी होकर विहार करें। और फिर यह भी समझाया कि कोई साधक स्मृतिमान कैसे होता है। वह स्मृतिमान तब होता है जब काया की अनुपश्यना करते हुए उद्योगशील होकर स्मृतिमान और संप्रज्ञानी होता है। ऐसे ही वेदना की अनुपश्यना करते हुए भी, चित्त की अनुपश्यना करते हुए भी, और धर्मों की अनुपश्यना करते हुए भी[१०]।

यही नहीं, एक अन्य प्रसंग में भी भगवान ने इसी बात को दोहराया है। प्रसंग यह था कि कोई साधक स्वयं को अपना द्वीप बना कर, अपनी शरण में गया हुआ, किसी अन्य की शरण में न जाकर और धर्म को अपना द्वीप बना कर, धर्म की शरण में गया हुआ, किसी अन्य की शरण में न जाकर कैसे विहार करे। यहां भी उपरोक्त प्रकार से विहार करे, अर्थात चारों प्रकार की अनुपश्यना करते हुए स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बना रहे[११]।

अपने जीवनकाल में भगवान स्वयं भी यही किया करते थे। जैसे –

- भयानक मरणांतक पीड़ा को सहन किया – स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बने रह कर[१२]।
- चापाल चैत्य में आयु संस्कार छोड़ा – स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बने रह कर[१३]।

पांव पर पांव रख कर उत्थानसंज्ञा मन में करके, दाहिनी करवट सिंह-शय्या से लेटे – स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बने रह कर[१४]।

भगवान के परिनिर्वाण के समय तक जो साधक वीतराग हो चुके थे, उन्होंने इस घटना को सहन किया – स्मृतिमान और संप्रज्ञानी बने रह कर। जो अवीतराग थे, उनमें से कोई-कोई बांह फैला कर क्रंदन करते थे, कटे वृक्ष के समान गिरते-पड़ते थे, धरती पर लोटते थे[१५]।

'सति' (स्मृति) और 'सम्पजञ्ञ' (संप्रज्ञान) – इन दोनों क्षमताओं को संयुक्त करना '*सतिपट्ठान*' (जागरूकता में प्रतिष्ठित हो जाना) है। इसके माध्यम से हम दुःख-विमुक्ति के ध्येय को प्राप्त कर सकते हैं।

टिप्पण

१. उदाहरण के लिए देखिए टी. डब्ल्यू. रीस. डेविड द्वारा संपादित पालि-इंग्लिश डिक्शनरी (प्रकाशन – पी.टी.एस.):
'सम्पजञ्ञ' तथा 'सम्पजानो' की प्रविष्टियां।
२. विभङ्ग, वि.आर.आई. ५२५, पी.टी.एस. ३९४;
पुग्गलपञ्ञत्ति, वि.आर.आई. ८०, पी.टी.एस. ४०
३. देखिए आर. सी. चिल्डर्स द्वारा संपादित 'ए डिक्शनरी आफ द पालि लैंगुएज' (प्रकाशक - केगन पाल लिमिटेड, लंदन, १९०९) पृष्ठ ४२३, 'सम्' की प्रविष्टि के नीचे।
४. प + जानन = पजानन (प्रज्ञापूर्वक जानना)
५. अभिधम्म अट्ठकथा २.१३३ (बर्मी संस्करण)
६. अभिधम्म अट्ठकथा १.१९२ (बर्मी संस्करण);
पटिसम्भिदामग्ग अट्ठकथा, ३४३ (बर्मी संस्करण)
७. दीघ० टीका २. ८१ (बर्मी संस्करण)
८. दसुत्तरं पवक्खामि, धम्मं निब्बानपत्तिया।
दुक्खस्सन्तकिरियाय, सब्बगन्थप्पमोचनं॥ (दी० नि० ३.३५०)
९. कतमे द्वे धम्मा बहुकारा? सति च सम्पजञ्ञञ्च। (दी० नि० ३.३५२)
१०. सतो भिक्खवे, भिक्खु विहरेय्य सम्पजानो, अयं वो अम्हाकं अनुसासनी। कथञ्च, भिक्खवे, भिक्खु सतो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा... वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति... चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति... धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति...। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सतो होति। (दी० नि० २.१६०)

११. कथञ्चानन्द, भिक्खु अत्तदीपो विहरति अत्तसरणो अनञ्ञसरणो, धम्मदीपो धम्मसरणो अनञ्ञसरणो? इधानन्द, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा...। (दी० नि० २.१६५)

१२. ...बाळ्हा वेदना वत्तन्ति मारणन्तिका। ता सुदं भगवा सतो सम्पजानो अधिवासेसि...। (दी० नि० २.१६४)

१३. अथ खो भगवा चापाले चेतिये सतो सम्पजानो आयुसङ्खारं ओस्सजि। (दी० नि० २.१६९)

१४. अथ खो भगवा दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेसि पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनसिकरित्वा। (दी० नि० २.१९६)

१५. तत्थ ये ते भिक्खू अवीतरागा... ये पन ते भिक्खू वीतरागा, ते सता सम्पजाना अधिवासेन्ति...। (दी० नि० २.२३१)

पातञ्जल योगसूत्र

१. समाधिपाद

१. अथ योगानुशासनम् ॥

२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥

३. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥

४. वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥

५. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥

६. प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥

७. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥

८. विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥

९. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥

१०. अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥

११. अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥

१२. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥

१३. तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥

१४. स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारसेवितो दृढभूमिः ॥

१५. दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥

१६. तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥

१७. वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् संप्रज्ञातः ॥

१८. विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥

१९. भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥

२०. श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥

२१. तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥

२२. मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः॥

२३. ईश्वरप्रणिधानाद्वा॥

२४. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥

२५. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्॥

२६. स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥

२७. तस्य वाचकः प्रणवः॥

२८. तज्जपस्तदर्थभावनम्॥

२९. ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च॥

३०. व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमि-
कत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः॥

३१. दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः॥

३२. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः॥

३३. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां
भावनातश्चित्तप्रसादनम्॥

३४. प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य॥

३५. विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी॥

३६. विशोका वा ज्योतिष्मती॥

३७. वीतरागविषयं वा चित्तम्॥

३८. स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा॥

३९. यथाभिमतध्यानाद्वा॥

४०. परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः॥

४१. क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता
समापत्तिः॥

४२. तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा सवितर्का समापत्तिः॥

४३. स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का॥

४४. एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता॥

४५. सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ॥

४६. ता एव सबीजः समाधिः ॥

४७. निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥

४८. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥

४९. श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥

५०. तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥

५१. तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥

२. साधनपाद

१. तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥

२. समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥

३. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥

४. अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥

५. अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥

६. दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥

७. सुखानुशयी रागः ॥

८. दुःखानुशयी द्वेषः ॥

९. स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥

१०. ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥

११. ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥

१२. क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥

१३. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥

१४. ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥

१५. परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥

१६. हेयं दुःखमनागतम् ॥

१७. द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥

१८. प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥

१९. विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥

२०. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥

२१. तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥

२२. कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥

२३. स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥

२४. तस्य हेतुरविद्या ॥

२५. तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥

२६. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥

२७. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥

२८. योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥

२९. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान-
समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥

३०. तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥

३१. जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥

३२. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

३३. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥

३४. वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥

३५. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥

३६. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥

३७. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥

३८. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥

३९. अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्ता संबोधः ॥

४०. शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥

४१. सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥

४२. सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः ॥

४३. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥

४४. स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥

४५. समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥

४६. स्थिरसुखमासनम् ॥

४७. प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥

४८. ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥

४९. तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥

५०. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥

५१. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥

५२. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥

५३. धारणासु च योग्यता मनसः ॥

५४. स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥

५५. ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥

३. विभूतिपाद

१. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥

२. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥

३. तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥

४. त्रयमेकत्र संयमः ॥

५. तज्जयात् प्रज्ञालोकः ॥

६. तस्य भूमिषु विनियोगः ॥

७. त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥

८. तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥

९. व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षण-चित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥

१०. तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥

११. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥

१२. ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ॥

१३. एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥

१४. शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥

१५. क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥

१६. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥

१७. शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥

१८. संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ॥

१९. प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥

२०. कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥

२१. सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥

२२. मैत्र्यादिषु बलानि ॥

२३. बलेषु हस्तिबलादीनि ॥

२४. प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥

२५. भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥

२६. चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥

२७. ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥

२८. नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥

२९. कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥

३०. कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥

३१. मूर्धज्योतिपि सिद्धदर्शनम् ॥
३२. प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥
३३. हृदये चित्तसंवित् ॥
३४. सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् ॥
३५. ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥
३६. ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥
३७. बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥
३८. उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥
३९. समानजयाज्ज्वलनम् ॥
४०. श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥
४१. कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥
४२. बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥
४३. स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्भूतजयः ॥
४४. ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥
४५. रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥
४६. ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥
४७. ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥
४८. सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥
४९. तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥
५०. स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥
५१. क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥
५२. जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥
५३. तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥
५४. सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ॥

४. कैवल्यपाद

१. जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः ॥
२. जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥
३. निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥
४. निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥
५. प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥
६. तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥
७. कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥
८. ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥
९. जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कार-
योरेकरूपत्वात् ॥
१०. तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥
११. हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥
१२. अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥
१३. ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥
१४. परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥
१५. वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥
१६. न चैकचित्ततन्त्रं चेद्वस्तु तत्प्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥
१७. तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥
१८. सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥
१९. न तत् स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥
२०. एकसमये चोभयानवधारणम् ॥
२१. चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥
२२. चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥
२३. द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥

२४. तदसङ्ख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥

२५. विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ॥

२६. तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥

२७. तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥

२८. हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥

२९. प्रसङ्ख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥

३०. ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥

३१. तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्यात् ज्ञेयमल्पम् ॥

३२. ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥

३३. क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥

३४. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥

संदर्भ-ग्रंथ

- Buddha's Philosophy, The
  (G.F. Allen) (George Allen and Unwin Ltd., London)
- Buddhist Dictionary: Manual of Buddhist Terms and Doctrines
  (Nyanatiloka) (Frewin & Co., Ltd., Colombo, Ceylon)
- Dictionary of the Pāli Language
  (Robert Caesar Childers) (Cosmo Publications, New Delhi)
- Early Buddhism and the Bhagavadgītā
  (K.N. Upadhyaya) (Motilal Banarasidass, Delhi-Varanasi- Patna)
- Gheranda Samhita
  (Srish Chandra Vasu) (Theosophical Publishing House, Adyar, Madras)
- Great Systems of Yoga
  (Ernst Wood) (D.B. Taraporevala Sons & Co. Pvt. Ltd., Bombay)
- Hathayoga Pradipika, The
  (Svatmarama) (The Theosophical Society, Adyar, Madras)
- Heyapaksha of Yoga, The
  (P.V. Pathak) (Asian Publication Services, New Delhi)
- History of Sanskrit Literature, A
  (A.B. Keith) (Oxford University Press, London E.C.4)

- History of Yoga, A
  (Vivian Worthington) (Routledge & Kegan Paul, London)
- Importance of Vedanā and Sampajañña, The
  (Vipassana Research Institute, Igatpuri)
- Jataka Stories
  (E.B. Cowell) (Motilal Banarsidass Publishers Pvt. Ltd., Delhi)
- Jhānas in the Therāvāda Buddhist Meditation, The
  (Mahathera Henepola Gunaratana) (Buddhist Publication Society, Kandy, Sri-Lanka)
- Kundalini Yoga
  (Swami Sivananda) (Divine Life Society, Rishikesh)
- Mahāsatipaṭṭhāna Suttaṃ
  (Vipassana Research Institute, Igatpuri)
- Pāli - English Dictionary
  (T.W. Rhys Davids & W. Stede) (Oriental Books Reprint Corporation, New Delhi)
- Patanjali's Yoga Sutras
  (Rama Prasada) (Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., New Delhi)
- Practical Yoga - Ancient and Modern
  (Ernst Wood) (Rider, London and Dutton, New York)
- Quintessence of Yoga Philosophy
  (D.V. Athalye) (D.B. Taraporevala Sons & Company Pvt. Ltd.)
- Re-appraisal of Yoga, A
  (Georg Feuerstein & J. Miller) (Rider & Company, London)

- Sankara on the Yoga-sutras (Vol. I)
(Trevor Leggette) (Routledge & Kegan Paul, London)
- Science of Yoga, The
(I.K. Taimni) (Theosophical Publishing House, Adyar, Madras)
- Study of Patanjali, A
(Surendranath Dasgupta) (University of Calcutta)
- Text-book of Yoga
(Georg Feuerstein)
- Time and Temporality in Samkhya Yoga and Abhidharma Buddhism
(Brij Mohan Sinha) (Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., New Delhi)
- Visuddhimagga of Buddhaghosācariya
(Henry Clarke Warren) (Harvard Oriental Series - Vol.XLI)
- Yoga
(Ernst Wood) (Penguin Books Ltd., England)
- Yoga and Indian Philosophy
(Karl Werner) (Motilal Banarasidass, Delhi-Varanasi- Patna)
- Yoga as Philosophy and Religion
(Surendranath Dasgupta) (Motilal Banarsidass, Delhi-Varanasi- Patna)
- Yoga- Immortality and Freedom
(William R. Trask) (Routledge & Kegan Paul, London)

- Yoga of Patanjali, The
(M.R. Yardi) (Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune)
- Yoga Stories and Parables
(Swami Jyotirmayananda) (Miami, Florida, U.S.A.)
- Yoga-Sutras of Patanjali
(J.R. Ballantyne & Govind Sastri Deva)
- Yoga-Sutras of Patanjali
(M.N. Dwivedi) (Theosophical Publishing House, Adyar, Madras)
- Yoga-Sutras of Patanjali on Concentration of Mind, The
(Fernando Tola & Carmen Dragonetti) (Tr. K.D. Prithipaul) (Motilal Banarsidass, Delhi)
- Yoga-System of Patanjali, The
(James Haughton Woods) (Harvard Oriental Series, Vol. XVII)
- Yogavārttika of Vijñānabhikṣu
(T.S. Rukmani) (Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., New Delhi)

- कल्याण योगाङ्क (भाग १० - अङ्क १,२,३)
(गीता प्रेस, गोरखपुर)
- पञ्चतन्त्र
(विष्णुशर्मा)
- पातञ्जलयोगदर्शनम्
(श्रीनारायणमिश्र) (भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी)
- पातञ्जल योग प्रदीप
(स्वामी ओमानन्द तीर्थ) (गीता प्रेस, गोरखपुर)

- पातञ्जल योगशास्त्र – एक अध्ययन
  (डा. ब्रह्ममित्र अवस्थी) (इन्दु प्रकाशन, दिल्ली)
- भारत के महान योगी
  (विश्वनाथ मुखर्जी) (अनुराग प्रकाशन, वाराणसी)
- महामुनि पतञ्जलि – भ्रान्तियां और निराकरण
  (वैद्य दामोदरप्रसाद शर्मा शास्त्री) (नीलकण्ठ कालोनी, इंदौर)
- योग-मीमांसा
  (स्वामी सत्यपति परिव्राजक) (आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली)
- योगसूत्रम्
  (डा. सुरेशचंद्र श्रीवास्तव) (संवित् प्रकाशन, इलाहाबाद)
- श्रीमद्भगवद्गीता
  (गीता प्रेस, गोरखपुर)
- सांख्यकारिका
  (ईश्वरकृष्ण) (हरिदास संस्कृत ग्रंथमाला, २४९, बनारस)
- 'पालि तिपिटक' के सारे ग्रंथ (विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी के संस्करण)
- नेत्तिपकरण अट्ठकथा
- विभङ्ग अट्ठकथा (सम्मोहविनोदनी)
- अट्ठसालिनी (पी.वी. बापट तथा आर.डी. वाडेकर) (ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे)
- विसुद्धिमग्ग (संपादक-संशोधक: डा. रेवतधम्म) (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी)
- जयमङ्गलअट्ठगाथा

विपश्यना साहित्य

हिंदी

- निर्मल धारा धर्म की - (पांच दिवसीय प्रवचन) रु. ५५/-
- प्रवचन सारांश (शिविर प्रवचन) रु. ४५/-
- जागे पावन प्रेरणा रु. ८०/-
- जागे अंतर्बोध रु. ५०/-
- धर्म: आदर्श जीवन का आधार रु. ४०/-
- तिपिटक में सम्यक संबुद्ध, भाग-२ रु. १३०/
- धारण करे तो धर्म रु. ७०/-
- क्या बुद्ध दुःखवादी थे? रु. ३५/-
- मंगल जगे गृही जीवन में रु. ४०/-
- धम्मवाणी संग्रह (पालि गाथाएं एवं हिंदी अनु.) रु. ४०/-
- विपश्यना पगोडा मार्गिका रु. १००/-
- सुत्तसार भाग १ (दीघ एवं मज्झिम निकाय) रु. ९५/-
- सुत्तसार भाग २ (संयुत्तनिकाय) रु. ५०/-
- सुत्तसार भाग ३ (अंगुत्तर एवं खुद्दकनिकाय) रु. ४५/-
- धन्य बाबा! रु. ३५/-
- कल्याणमित्र सत्यनारायण गोयन्का (व्यक्तित्व और कृतित्व) रु. ५०/-
- पातंजल योगसूत्र रु. ५०/-
- आहुनेय्य, पाहुनेय्य, अंजलिकरणीय - डॉ. ओम प्रकाश जी रु. ३०/-
- राजधर्म [कुछ ऐतिहासिक प्रसंग] रु. ३५/-
- आत्म-कथन भाग-१ रु. ३५/-
- लोक गुरु बुद्ध रु. १०/-
- देश की बाह्य सुरक्षा रु. ०५/-
- गणराज्य की सुरक्षा कैसे हो! रु. ०६/-
- शाक्यों और कोलियों के गणतंत्र का विनाश क्यों हुआ? रु. १०/-
- अंगुत्तर निकाय, भाग १ रु. १२५/-
- केंद्रीय कारागृह जयपुर, विपश्यना का प्रथम जेल शिविर रु. ३०/-
- विपश्यना : लोकमत भाग-१ रु. ५५/-
- विपश्यना : लोकमत भाग-२ रु. ४५/-
- अग्रफल राजवैद्य जीवक रु. २०/-
- मंगल हुआ प्रभात (हिंदी दोहे) रु. ५५/-
- पथ-प्रदर्शिका रु. २/-
- विपश्यना क्यों? रु. १/-
- सम्राट अशोक के अभिलेख रु. ५०/-
- आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का का संक्षिप्त जीवन-परिचय रु. ३०/-
- अहिंसा किसे कहें? रु. १५/-
- लकुण्डक भद्दिय रु. १०/-
- गौतम बुद्ध: जीवन-परिचय और शिक्षा रु. २५/-
- भगवान बुद्ध की साम्प्रदायिकता-विहीन शिक्षा रु. १०/-
- बुद्ध-जीवन चित्रावली रु. ३३०/-
- भगवान बुद्ध के अग्रश्रावक महामोग्गल्लान रु. ४५/-
- क्या बुद्ध नास्तिक थे? रु. ८५/-
- तिपिटक में सम्यक संबुद्ध, (६ भागों में) भाग-१ रु. ४५/-, भाग-२ रु. ५०/-, भाग-३ रु. ५५/-, भाग-४ रु. ४५/-, भाग-५ रु. ४५/-, भाग-६ रु. ५५/-

और विकास (१७६ चित्रों का संग्रह) सजिल्द रु. ६२५/-

- महामानव बुद्ध की महान विद्या विपश्यना का उद्गम रु. ४५/-
- भगवान बुद्ध के महाश्रावक महाकस्सप (धुतवादियों में 'अग्र') रु. १४५/-
- महामानव बुद्ध की महान विद्या विपश्यना का उद्गम और विकास रु. ५०/-
- भगवान बुद्ध के अग्रउपासक अनाथपिण्डिक रु. ३०/-
- भगवान बुद्ध की अग्रश्राविका किसागोतमी रु. ३०/-
- चित्त शुद्धि एवं स्वस्थ आरोग्य रु. १५०/-
- दुखियारों की राह रु. ३५/-
- विसाखा मिगारमाता रु. ४५/-
- मगधराज सेनिय बिम्बिसार रु. ३५/-
- बुद्धसहस्सनामावली (पालि एवं हिंदी) रु. १२०/-
- आनन्द – भगवान बुद्ध के उपस्थाक रु. ७०/-
- जीने की कला रु. ५५/-
- धम्म [illegible] श्री [illegible] जी रु. २५/-
- भगवान बुद्ध की अग्रश्राविकाएं खुज्जुत्तरा एवं सामावती तथा उत्तरानन्दमाता रु. ८०/-
- विपश्यना पत्रिका संग्रह भाग - १ रु. ५०/-
- विपश्यना पत्रिका संग्रह भाग - २ रु. २५/-
- आदर्श दंपति नकुलपिता एवं नकुलमाता रु. ३५/-
- [illegible]

- १२ हिंदी पुस्तिकाओं का सेट — रु. १४/-
- धम्म-वंदना (पालि गाथाएं, हिंदी अनुवाद) — रु. ४५/-
- धम्मपद (संशोधित हिंदी अनुवाद सहित) — रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (समीक्षा एवं भावानुवाद) — रु. ५५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (भावानुवाद) — रु. ३५/-
- बुद्धगुणगाथावली (पालि) — रु. ३०/-
- बुद्धसहस्सनामावली (पालि) — रु. १५/-
- प्रारंभिक पालि — रु. ८५/-
- प्रारंभिक पालि की कुंजी — रु. ५०/-
- जागो लोगां जगत रा (राजस्थानी दूहा) — रु. ४५/-
- धारण करै तो धरम (राजस्थानी) — रु. १०/-
- ५ राजस्थानी पुस्तिकाओं का सेट — रु. ५/-
- विश्व विपश्यना स्तूप का संदेश (हिंदी, मराठी, अंग्रेजी) — रु. १०/-

मराठी

- जगाच्यादी कथा — रु. ७०/-
- जागे पावन प्रेरणा — रु. ८०/-
- प्रवचन सारांश — रु. ४०/-
- धर्म: आदर्श जीवनाचा आधार — रु. ४०/-
- जागे अंतर्बोध — रु. ६५/-
- निर्मळ धारा धर्माची — रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (भावानुवाद) — रु. ४५/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (समीक्षा) — रु. ४०/-
- मंगलमय गृहस्थ-जीवन — रु. ४०/-
- भगवान बुद्धांची सांप्रदायिकता-विहीन शिकवणूक — रु. १०/-
- बुद्धजीवन-चित्रावली — रु. ३३०/-
- आनंदाच्या वाटेवर — रु. १५०/-
- आत्म-कथन भाग-१ — रु. ५०/-
- अपराजित गजराज जीवक — रु. २०/-
- महामानव बुद्धांची ध्यान विधा विपश्यना: उगम आणि विकास — रु. १२५/-
- लोक गुरु बुद्ध — रु. ०६/-
- क्रुद्धक भांटव — रु. १२/-
- प्रमुख विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयंका यांचा संक्षिप्त जीवन-परिचय — रु. १८/-

गुजराती

- प्रवचन सारांश — रु. ४५/-
- धर्म: आदर्श जीवननो आधार — रु. ५०/-
- महासतिपट्ठानसुत्त — रु. २०/-
- जागे अंतर्बोध — रु. ७५/-
- धारण करे तो धर्म — रु. ७०/-
- जागे पावन प्रेरणा — रु. १००/-
- क्या बुद्ध दुःखवादी थे? — रु. ३०/-
- विपश्यना शा माटे? (पुस्तिका) — रु. ०२/-
- मंगल जगे गृही जीवन में — रु. ३५/-
- निर्मल धारा धर्म की — रु. ६५/-
- बुद्धजीवन चित्रावली — रु. ३३०/-
- लोक गुरु बुद्ध — रु. ०६/-
- भगवान बुद्ध की साम्प्रदायिकता विहीन शिक्षा — रु. १०/-
- सम्राट अशोक के अभिलेख — रु. ७५/-

अन्य भाषाओं में

- द आर्ट ऑफ लिविंग (तमिळ) — रु. ९०/-
- डिस्कोर्स समरीज (तमिळ) — रु. ३०/-
- दी सरदन फ्लो ऑफ धम्म (तमिळ) — रु. २५/-
- मंगल जगे गृही जीवन में (तेलगु) — रु. ३५/-
- प्रवचन सारांश (बंगाली) — रु. ३५/-
- धर्म: आदर्श जीवन का आधार (बंगाली) — रु. ३०/-
- महासतिपट्ठानसुत्त (बंगाली) — रु. ९०/-
- प्रवचन सारांश (मलयालम) — रु. ४५/-
- निर्मल धारा धर्म की (मलयालम) — रु. ४५/-
- जीने का हुनर (उर्दू) — रु. ७५/-
- धर्म: आदर्श जीवन का आधार (पंजाबी) — रु. ६०/-
- निर्मळ धारा धर्माची (पंजाबी) — रु. ७०/-

पालि तिपिटक सेट:

अङ्गुत्तरनिकाय (अजिल्द) (१२ ग्रंथ) — रु. १५००/-

खुद्दकनिकाय - सेट १ (९ ग्रंथ) — रु. ४८००/-

दीघनिकाय अभिनवटीका (रोमन) (भाग १ और २) — रु. १०००/-

English Publications

- Sayagyi U Ba Khin Journal — Rs. 225/-
- Essence of Tipitaka by U Ko Lay — Rs. 130/-
- The Art of Living by Bill Hart — Rs. 90/-
- The Discourse Summaries — Rs. 60/-
- Healing the Healer by Dr. Paul Fleischman — Rs. 35/-
- Come People of the World — Rs. 40/-
- Gotama the Buddha: His Life and His Teaching — Rs. 45/-
- The Gracious Flow of Dharma — Rs. 40/-
- Discourses on Satipaṭṭhāna Sutta — Rs. 80/-
- The Wheel of Dhamma Rotates — Rs. 850/-
- Vipassana : Its Relevance to the Present World — Rs. 110/-
- Dharma: Its True Nature — Rs. 115/-
- Vipassana : Addictions & Health (Seminar 1989) — Rs. 115/-
- The Importance of Vedanā and Sampajañña — Rs. 135/-
- Pagoda Seminar, Oct. 1997 — Rs. 80/
- Pagoda Souvenir, Oct. 1997 — Rs. 50/-
- A Re-appraisal of Patanjali's Yoga- Sutra by S. N. Tandon — Rs. 85/-
- The Manuals Of Dhamma by Ven. Ledi Sayadaw — Rs. 205/-
- Was the Buddha a Pessimist? — Rs. 65/-
- Psychological Effects of Vipassana on Tihar Jail Inmates — Rs. 80/-
- Effect of Vipassana Meditation on Quality of Life (Tihar Jail) — Rs. 100/-
- For the Benefit of Many — Rs. 160/-
- Manual of Vipassana Meditation — Rs. 80/-
- Realising Change — Rs. 140/-
- The Clock of Vipassana Has Struck — Rs. 130/-
- Meditation Now : Inner Peace through Inner Wisdom — Rs. 85/-
- S. N. Goenka at the United Nations — Rs. 25/-
- Defence Against External Invasion — Rs. 10/-
- How to Defend the Republic? — Rs. 6/-
- Why Was the Sakyan Republic Destroyed? — Rs. 12/-
- Mahāsatipaṭṭhāna Sutta — Rs. 65/-
- Pali Primer — Rs. 95/-
- Key to Pali Primer — Rs. 55/-
- Guidelines for the Practice of Vipassana — Rs. 2/-
- Vipassana In Government — Rs. 1/-
- The Caravan of Dhamma — Rs. 90/-
- Peace Within Oneself — Rs. 10/-
- The Global Pagoda Souvenir 29 Oct.2006 (English & Hindi) — Rs. 60/-
- The Gem Set In Gold — Rs. 75/-
- The Buddha's Non-Sectarian Teaching — Rs. 15/-
- Acharya S. N. Goenka An Introduction — Rs. 25/-
- Value Inculcation through Self-Observation — Rs. 35/-
- Glimpses of the Buddha's Life — Rs. 330/-
- Pilgrimage to the Sacred Land of Dhamma (Hard Bound) — Rs. 750/-
- An Ancient Path — Rs. 100/-
- Vipassana Meditation and the Scientific World View — Rs. 15/-
- Path of Joy — Rs. 200/-
- The Great Buddha's Noble Teachings The Origin & Spread of Vipassana (Small) — Rs. 160/-
- Vipassana Meditation and Its Relevance to the World (Coffee Table Book) — Rs. 800/-
- The Great Buddha's Noble Teachings The Origin & Spread of Vipassana (HB) — Rs. 650/-
- Buddhaguṇagāthāvalī (in three scripts) — Rs. 30/-
- Buddhasahassanāmāvalī (in seven scripts) — Rs. 15/-
- English Pamphlets, Set of 9 — Rs. 11/-
- Set of 10 Post Card — Rs. 35/-
- Gotama the Buddha: His Life and His Teaching (French) — Rs. 50/-
- Meditation Now: Inner Peace through Inner Wisdom (French) — Rs. 80/-
- For the Benefit of Many (French) — Rs. 195/-
- For the Benefit of Many (Spanish) — Rs. 190/-
- The Art of Living (Spanish) — Rs. 130/-
- Path of Joy (German, Italian, Spanish, French) — Rs. 300/-

संपर्क: विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, जि. नासिक, महाराष्ट्र. फोन: ०२५५३-२४४०७६, २४४०८६, २४३७१२, २४३२३८. फैक्स: ०२५५३-२४४१७६. (दक्षिण भारतीय भाषाओं में अनुवादित विपश्यना साहित्य, स्थानीय केंद्रों पर उपलब्ध है) Email: vri_admin@dhamma.net.in; विपश्यना विशोधन विन्यास के प्रकाशन अब ऑनलाइन भी खरीदे जा सकते हैं। कृपया देखें www.vridhamma.org

विपश्यना साधना केंद्र

विश्वभर में विपश्यना के निम्नलिखित केंद्र हैं। इन केंद्रों पर प्रायः हर माह दस दिवसीय आवासीय शिविर आयोजित होते हैं। इच्छुक व्यक्ति किसी भी केंद्र से भावी शिविर-कार्यक्रमों की जानकारी प्राप्त करके, अपनी सुविधानुसार सम्मिलित हो सकते हैं: -

प्रमुख केंद्र = धम्मगिरि, धम्मतपोवन : विपश्यना विश्व विद्यापीठ, इगतपुरी-४२२४०३, नासिक. फोन: [९१] (०२५५३) २४४०७६, २४४०८६, २४३७१२, २४३२३८; फैक्स: ०२५५३-२४४१७६. Website: www.vri.dhamma.org, Email: <info@giri.dhamma.org> (केवल कार्यालय के समय अर्थात सुबह १० बजे से सायं ५ बजे तक).

धम्मनासिकाः संपर्कः १) नासिक विपश्यना केंद्र, म.न.पा. जलशुद्धिकरण केंद्र के सामने, शिवाजीनगर, सातपुर, (पोस्ट-YCMOU), नासिक-४२२२२२. संपर्कः फोन: (०२५३) ६५१६-२४२, ३२०३-६७७, मोबाइल: ९८२२५-१३२४४, Email. info@nasika.dhamma.org

धम्मसरिता : धम्मसरिता विपश्यना केंद्र, जीवन संध्या मंगल संस्थान, मानोशी वृद्धाश्रम, सोरगांव, पोस्ट पड़घा, ता. भिवंडी, जि. ठाणे-४२११०१ (खडावली मध्य रेल्वे स्टेशन के पास). online registration www.sarita.dhamma.org Email: registration Email: dhamma.sarita@gmail.com, info@sarita.dhamma.org, मोबा. ९१+ ९८२१९-५९३३६, ७३९८३-२४६५९, ७३९८३-२५०८६. (कार्यालय का समय सुबह ८ बजे से दोपहर १२ सायं ४ से ६ बजे तक). संपर्कः मोबा. +९१- ७३९८३-२४६५९, ७३९८३-२५०८६.

धम्ममनमाडः मनमाड विपश्यना केंद्र, अनकाई किला स्टेशन के पास, पो. अनकाई, ता. येवला, जि. नासिक-४२२ ४०३ संपर्कः (०२५९१) २२५१४१-२३१४१४.

धम्मवाहिनीः मुंबई परिसर विपश्यना केंद्र, गांव मोहे, टिटवाला (पूर्व) कल्याण, जि. ठाणे. संपर्कः संपर्कः मोबाईल: ९३७३०-६९९५८. केवल कार्यालय के दिन– १२ से सायं ६ तक.

धम्मसाकेतः विपश्यना केंद्र, नारायण स्कूल के पास, कानसई रोड, सुभाष टेकड़ी, उल्हासनगर-४२१००४, जि. ठाणे, महाराष्ट्र

धम्मविपुलः विपश्यना साधना केंद्र, सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट, प्लॉट नं. ९१ए; सेक्टर २६, पारसिक हिल, सीबीडी बेलापुर, नवी मुंबई ४०० ६१४. फोन. (०२२) २७५२-२२७७. Email: dhammavipula@gmail.com

धम्मपत्तनः एस्सेल वर्ल्ड के पास, गोराई खाड़ी, बोरिवली (पश्चिम) मुंबई – ४०० ०९१ **व्यवस्थापक,** फोन: (९१) (०२२) २८४५-२२३८, ३३७४-७४०१, मोबा. ९७७३०-६९९७५, (सुबह ११ से सायं ५ बजे तक); टेलि-फैक्स: (०२२) ३३७४-७४३१ Email: info@pattana.dhamma.org; Website: www.pattana.dhamma.org

धम्मसरोवरः खान्देश विपश्यना केंद्र, गट नं. १६६, देवपूर जलशुद्धिकरण केंद्र के पास, मु.पो. शिरुडी-४२४ ००२, जिला- धुळे, (०२५६२) २०३४८२, ६९९५७३. मोबा. ९२२५४-६१०२१. संपर्कः फोन: २२२८६१. मोबा. ९९२२६-०७३१८, ९८२२१-७१४२४, ९४२२७-७७९०२. Email: info@sarovara.dhamma.org

धम्मानन्दः पुणे विपश्यना केंद्र, मरकळ गांव के पास, आळंदी से ८ कि.मी. मोबा. कार्यालय ९२७१३-३५६६८. व्यवस्थापक मोबा. ९४२०४-८२८०५. संपर्कः पुणे विपश्यना समिति, नेहरू स्टेडियम के सामने, आनंद मंगल कार्यालय के पास, दादावाडी, पुणे-४११००२. फोन: (०२०) २४४६८९०३, २४४३६२५०; टेलि/फैक्स: २४४६४२४३. Email: info@ananda.dhamma.org Website:www.pune.dhamma.org;

धम्मपुण्णः संपर्कः पुणे विपश्यना समिति, दादावाडी, नेहरू स्टेडियम के सामने, आनंद मंगल कार्यालय के पास, पुणे-४११००२. फोन: (०२०) २४४३६२५०, २४४६८९०३. फैक्स: २४४६४२४३; Email: info@punna.dhamma.org

धम्मालयः दक्षिण विपश्यना अनुसंधान केंद्र, गांधीनगर रोड, आळते पार्क, आळते, ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर, पिन: ४१६१२३. फोन ०२३०-२४८७१६७, २४८७३८३. Email: info@alaya.dhamma.org. संपर्कः कार्यालय: २१०१/१९ ई, अरविंद अपार्टमेंट, महावीरनगर, कोल्हापुर-४१६००५, फोन:(२३१) २५३०९९९. मोबा. ९३७३७-१३२३२.

धम्मअनाकुलः विपश्यना साधना केंद्र, खारगांव फाटा, तेल्हारा-४४४१०८ जि. अकोला. संपर्कः १) विपश्यना चैरिटेबल ट्रस्ट, शेगांव, अपना बाजार, मेन रोड, शेगांव, जि. बुलढाणा. फोन: ९५७९८-६७८९०, ९८८१२-०४१२५. २) श्री महेंद्र सिंह आनंद, मोबाइल: ९४२२१-८१९३०. Email: info@anakula.dhamma.org

धम्मअजयः विपश्यना साधना केंद्र, ग्राम - अजयपुर, पो. चिचपल्ली, मूल रोड, चंद्रपुर. Email: dhammaajaya@gmail.com संपर्कः १) श्री धारड़, सुमन नगर, नगीनाबाग वार्ड नं. २ जि. चंद्रपुर पिन- ४४२४०१, मोबाइल: ८००७१५१०५०, ९४२१७-२१००६. २) श्री प्रीतिकमल पाटील, मोबाइल: ९४२१७-२१००६, ९८२२५-७०४३५, ९३७०३१२६७३.

धम्मपल्लः संपर्कः श्री. शेंडे, सिद्धार्थ सोसायटी, पवननगर, ४६५००१, फोन: ९४२२८-६५६६१.

धम्मभूसनः विपश्यना साधना समिति, शांतिनगर, ओमकार कॉलोनी, पांडेचा हायस्कूल के पास, जि. जलगांव, भुसावल ४२५२०१. Email: info@bhusana.dhamma.org, संपर्कः मोबा. ९८२२१-१४०५६.

धम्मअजन्ता : अजन्ता अन्तर्राष्ट्रीय विपश्यना समिति, 'गजानन' २ सुराणा नगर, जालना रोड, औरंगाबाद-४३१००३. (औरंगाबाद वेरूळ रोड, पर २० किलोमीटर दुर्गावर, धागमंद होटेल ५०० मी. अंतरपर केंद्र का बोर्ड है) संपर्कः मोबाईल: ९४२२२-११३६४, ९९२२८-१७४३०.

धम्मनागः नागपुर विपश्यना केंद्र– महुरझरी गांव, नागपुर-कलमेश्वर रोड के पास, नागपुर; संपर्कः फोन: ०७१२-२४५८६८६, २८८०२६१, मोबा. ९४२३४-०४६००; फैक्स: २५३१९१६. Email: info@naga.dhamma.org

धम्मसुरतिः संपर्कः १) श्री खापर्डे, एकावनो मन्नो धम्म प्रशिक्षण संस्था, सुगतनगर, नागपुर-१४. फोन: (०७१२) २६३०११५, फैक्स: २६५०८६७. मोबा. ९४२२१-२९२२१ २) सुरेंद्र गजभे: २६३२९१८. मोबा. ९२२६१-९६०८७.

धम्म अमरावती : विपश्यना केंद्र, लुंबिनी मोगरा, पो. भानखेडा, ता. जि. अमरावती संपर्कः श्री किशोर देशमुख, द्वारा डॉ. सी. कमल ग. गवई, ४८ कमलपुष्प कांग्रेसनगर, अमरावती-४४४६०६ फोनः (०७२१) २६६२१७९, मोबा. ९४२०७२१८४४

धम्मवसुधाः विपश्यना केंद्र, जियरा पोस्ट झडशी, ता. सेलू, जि. वर्धा संपर्कः १) श्री एन. सी. वाले, मोबा. ९३२६७३२५५०, ९३२६७३२५८७. २) श्री काटवे, मोबा. ९७३००६९७२६. Email: dhammavasudha@yahoo.com.in

धम्म छत्रपतिः फलटन, सातारा, महाराष्ट्र

धम्म आवासः लातुर विपश्यना समीती, आर. टी. ओ आफीस के पास, वसंत विहार कालोनी, बाभळगाव रोड, लातूर-४१३५३१ संपर्कः १) श्री द्वारकादास भुतडा, मोबा. ९६७३२५९९००, ०२३८२-२५९२८८. २) श्री आकाश कामदार, मोबा. ९९७०२-७७७०१.

धम्म निरंजनः विपश्यना साधना केंद्र, नेरली कुष्ठधाम नेरली. (नांदेड से ५ कि.मी. की दुरी पर) संपर्कः १) श्री एस. एम. ओंधले, मोबाइलः ९४२२१८९३१८. २) डॉ. कुलकर्णी, फोनः (०२४६२) २५२६५९. मोबाइलः ९४२२१७३२०२.

धम्मथलीः विपश्यना केंद्र, पो.बॉ. २०८, जयपुर-३०२००१, राजस्थान, फोनः [९१] ०१४१-२६८०२२०, मोबा ०-९६१०४-०१४०१, ०९६०२८-४८८९६. फक्सः २५७६२८३. Email: info@thali.dhamma.org

धम्ममरुधराः विपश्यना साधना केंद्र, मर्लाग्या रिसोर्ट के पीछे, पाल-दोपासनी लींक रोड, चोखा, जोधपुर-३४२००९. मोबा. +९१-९३१४७२७२१५, +९१-९८२८१३११२०. फैक्सः +९१-२९१-२७४६४३५. Email: info@marudhara.dhamma.org संपर्कः श्री नेमीचंद भंडारी, ४१. अशोक नगर, पाल लींक रोड, जोधपुर-३४२००३. मोबा.: +९१-९८२९०२७६२१.

धम्मपुब्बजः चूरु (राजस्थान) पुब्बज भुमी विपश्यना ट्रस्ट, बनेरी रोड, (चूरु से ६ कि.मी.) चूरु (राजस्थान): संपर्कः १) श्री श्रवण कुमार फुलवारी, सी-८६, सामुदायिक भवन के पास अग्रसेन नगर, चूरु, मोबा. ०९४१४६-७६०६१. Email: gk.churu@gmail.com २) श्री सुरेश खन्ना, ६५ इंद्रिरा कालोनी, बनी पार्क, जयपुर, मोबा. ९४१३१-५७-५६. Email: sureshkhanna56@yahoo.com

धम्मअजयगर : विपश्यना केंद्र, वीर तेजाजी नगर, थीगई, अजमेर-३०५००३; फोनः (०१४५) २४४३६०४. संपर्कः श्री कैलाश बैरवाल, मोबा. ९४१३२-२८३४०, ९४६१५६१३४४, ९००११९६५५६. Email: kailashbairwal@yahoo.com

धम्मपुष्करः विपश्यना केन्द्र, ग्राम रेवन (केकेल), पुष्कर पर्वतसर रोड, पुष्कर, जि अजमेर, मोबा. +९१-९४१३३-७३५७०, फोनः +९१-१४५-२७८०५७०. संपर्कः १) श्री रवि तोषनीवाल, मोबा. ०९८२९०-३१७७८, Email: info@toshcon.com २) श्री अनिल धारीवाल, मोबा. ०९८२९०-२८२७५. फैक्सः ०१४५-२७८७१३१.

धम्मसोतः विपश्यना साधना संस्थान, गढला गांव, (निम्मोड पोलिस पोस्ट के पास) बल्लभगड-सोहना रोड, (सोहना से १२ कि.मी.), जिला- गुडगांव, सोहना, हरियाणा, मोबा ९८१२६५५५९९, ९८१२६६१४००. (बल्लभगड और सोहना से बस उपलब्ध है।) संपर्कः विपश्यना साधना संस्थान, रूम नं. १०१५, १० वा तल, हेमकुंट मोदी टावर्स, ९८ नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-११००१९. फोनः (०११) २६४८-५०७१, २६४८-५०७२, २६४५-२७७२. फैक्सः २६४७०६५८. Email: info@sota.dhamma.org

धम्मपट्ठान : विपश्यना साधना केंद्र, कम्मासपुर, जि. सोनीपत, हरियाणा, पिन-१३१००१. मोबा. ०९९९१८७४५२४, संपर्कः ऊपर धम्मसोत के संपर्क पर.

धम्मकारुणिकः विपश्यना साधना संस्थान, गवर्नमेंट स्कूल के पास, गांव नेवल, डाक सैनिक स्कूल कुंजपुरा, करनाल-१३२००१. टेली फैक्सः करनाल-१३२००१; संपर्कः श्री वर्मा, ५, अग्नि कालोनी, एस.बी.आई. के पास, Email: info@karunika.dhamma.org; ०१८४-२२५७५४३, २२५७४४४; मोबा. ९९९२०-००६०१.

धम्म हितकारीः रोहतक, हरियाणा

धम्मसिखर : हिमाचल विपश्यना केंद्र, धरमकोट मैक्लोडगंज, धर्मशाला, जिला- कांगरा, पिन-१७६२१९ (हि. प्र.). फोनः ०१८९२-२२१३०९ (पंजीकरण के लिए फोन सायं ४ से ५) Email: ०९३१८४९४०५१, ०९३१८४९४०५०. info@sikhara.dhamma.org

धम्मसलिलः देहरादून विपश्यना केंद्र, अल्लनगला गांव, देहरादून केन्द्र तथा संतला देवी मंदिर के पास, देहरादून-२४८००१. फोनः ०१३५-२१०४५५५, २७१५१८९. संपर्कः १) श्री भट्टारी, १८ स्टेट बिला, धकरा रोड, देहरादून-२४८००१. फोनः २६५३३६६ Email: info@salila.dhamma.org; २) श्री गुप्ता, फोनः (०१३५) २७१५१८९. फैक्सः २७१५५८०.

धम्मसुवत्थीः जेतवन विपश्यना साधना केंद्रः कटरा बाईपास रोड, बुद्धा इंटर कालेज के सामने, श्रावस्ती, पिन-२७१८४५; फोनः (०५२५२) २६५४३२, ०९३३५८३३३७५ Email: info@suvatthi.dhamma.org संपर्कः श्री मुरली मनोहर, मानन होटल, मोबाईलः ०९४१५०-३६८९६, ०९४१५७-५४०५३

धम्मलक्खणः लखनऊ विपश्यना केंद्र, अर्मी रोड, बख्शी का तालाब, लखनऊ-२२७२०२. फोनः (०५२२) २९६८०२५. संपर्कः १) श्री जैन, ए-१०१, रेप्ट्रन कोर्टस अपार्टमेंट्स, रिवरसाइड होटल के पीछे, आलमबाग, लखनऊ-२२६ ००५. (उ.प्र.) फोनः नि. (०५२२)-२८२-४४०८, मोबा. ०९३३५९-८६३४१, ०९४१५०-३६८९६, ०९४१५७-५४०५३. मोबा. ०९७१९४५४५३३४. Email: info@lakkhana.dhamma.org

धम्मधजः पंजाब विपश्यना केंद्र, आनंदगढ़, पो. बहलोवाली-१४६११०, जिला- होशियारपुर, फोनः ०१८८२-२७२३३३, मोबाइलः ९८१५१-४३८८८. Email: info@dhaja.dhamma.org

धम्म तिहारः नई दिल्ली जेल नं. ४ तिहार, केन्द्रीय कारागृह, नई दिल्ली

धम्म रक्खकः नई दिल्ली मजफगढ, पुलिस ट्रेनिंग कालेज

धम्मचक्क : विपश्यना साधना केंद्र, खरगीपुर गांव, पो. तिवरी, चौबेपुर, (सारनाथ), वाराणसी, मोबाः ०९३०७०९३४८५, ०९९३६२३४८२३, Email: info@cakka.dhamma.org (सारनाथ म्यूजियम से अंतरिक्षता है।) संपर्कः १) श्री गुप्ता, फोनः ०५४२-२२८८८९, मोबा. ९३३६९-१४८४१. (प्रातः १० से सायं ६.) २) श्री प्रेम शंकर श्रीवास्तव, मोबाइलः ९३३५४-१११८४.

धम्मकल्याण : कानपुर, अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना साधना केंद्र, ढोंढी घाट, हनुमान मंदिर के पास, गाँव रमा, पो. रमा, कानपुर नगर- २०९४०२, (सेन्ट्रल रेलवे स्टेशन से २३ कि० मी० एवं रमाईंवी चौराहा से १५ कि० मी० दूरी पर स्थित) फोन: ०५१८८-५४३७९३, ०५१८८-५४३७९५, मोबा. ०८९९५४८०१४९. Email: dhamma.kalyana@gmail.com, संपर्कः १) श्री अशोक साहू, मोबा. ०९८३९१-३८०८८, २) डा. ओ. पी गुप्ता, मोबा. ०९४५०१-३२४३६.

धम्मसिन्धु : कच्छ विपश्यना केन्द्र, ग्राम- बाड़ा, ता. मांडवी, जिला- कच्छ ३७०४६५. फोनः (०२८३४) २७३३०३, फैक्सः २२४४८८, २८८९११; Email: info@sindhu.dhamma.org [शिविर आरंभ होने के दिन सीधे केंद्र जाने के लिए वाहन सुविधा उपलब्ध। तदर्थ संपर्क- फोनः भुजः ०९४२७८-३३५३४ गांधीधाम- ०९४२६२-१६५३१, मांडवी - ०८२३८७-९५६७५.] संपर्कः श्री आर. ग्रो. के. टी. आर रोड, मांडवी-कच्छ-३७०४६५. फोनः (०२८३४) २२३०७६, २२३४०६.

धम्मकोट : सौराष्ट्र विपश्यना केंद्र, कोटारिया रोड, राजकोट. फोनः (०२८१) २९२४९२८, २९२४९४२,: मोबाईलः ९३२७९-२३५४० Email: info@kota.dhamma.org (राजकोट से १५ कि.मी.) संपर्कः १) सौराष्ट्र विपश्यना केंद्र, C/o भाभा कार्यानिंग होल, पंचनाथ रोड, राजकोट-३६०००१. फोनः ०२८१- २२२०८६१६, मोबाईलः ९४२७२-२१५९१, फैक्सः २२२१३८४. (प्रत्येक शिविर शुरू होने के दिन धम्मकोट के लिए यहाँ से वाहन ३ बजे जाता है); २) श्री मेहता, फोनः २५८७५९९, मोबाईलः ९४२८२०३२९१.

धम्मदिवाकरः उत्तर गुजरात विपश्यना केंद्र, मीठा गाम, ता. और जिला- मेहसाणा, गुजरात; फोनः (०२७६२) २७२८००. Email: info@divakara.dhamma.org संपर्कः फोनः (०२७६२) २५४६३४, २५३३१५, मोबा. ०९४२९२३३०००.

धम्मसुरिन्दः सुरेन्द्रनगर, गुजरात संपर्कः१) महारानीजी, फोनः (०२७५२) २४२०३०, २) डॉ. पंचिजी, फोनः २३२५६४.

धम्मभवनः संपर्कः १) 'धम्मभवन', ५ कालिंदी पार्क, अकोटा अतिथिगृह के पीछे, अकोटा, वडोदरा-३९००२०; फोनः (०२६५) २३४११८१, २) विठ्ठलभाई पटेल, फोनः (०२६९२) मोबा. ९८२५०-२८०५७, Email: vvsou@hotmail.com

धम्म अम्बिका : विपश्यना ध्यान केंद्र, नेशनल हायवे नं. ८, (मुंबई से अहमदाबाद) पश्चिम से २ कि० मी० दूरी पर बोरियाच टोलनाका, ग्राम धागडवाड ता. गणदेवी जि. नवसारी, फोनः ०२६३४ २९११००, पंजीकरणः दोपहर ११ से सायं ५ (०२६१) २२६०९६१, ०९८२५९५५८१२. www.ambika.dhamma.org Online registration: dhammaambikasurat@gmail.com संपर्कः १) वसंतभाई लाड, मोबा. ०९४२८१६०७१४, २) श्री रत्नाभाई के. पटेल, मोबा. ०९८२५०४४५३६.

धम्मपीठ : गुर्जर विपश्यना केंद्र, (अहमदाबाद रेलवे स्टेशन से ४० कि.मी., धोलका शहर से ३ कि.मी. पहले) ग्राम रनोडा, ता. धोलका, जिला- अहमदाबाद-३८७८१०, मोबा. ८९८००-०१११०, ८९८००-०१११२, ९४२६४-१९३९७. फोनः (०२७१४) २९४६९०. Email: info@pitha.dhamma.org (बस सुविधा हर शिविर के ० दिवस पर, पालडी बस स्टेंड (अहमदाबाद) दोपहर २:३० बजे) संपर्कः १) श्रीमती शर्मा लार्डी, मोबा ९८२४०-६५६६८.

धम्मखेत्तः विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केंद्र, (१२.६ किमी.) माइल स्टोन नागार्जुन सागर रोड, कुसुम नगर, वनस्थलीपुरम हैदराबाद-५०००७०, (आंध्र प्रदेश) फोनः (०४०) २४२४०२९०, ३२४६०७६२, ०९४९१५९४२८७, फैक्सः २४२४१७४६. Email: info@khetta.dhamma.org

धम्मसेतु : विपश्यना साधना केंद्र, ५३३, पझान- थंडलम रोड, थिरुनीरमलई रोड, द्वारा थोरुमुदिवक्कम, चेन्नई-६०००४४. मोबाइलः ९४४४२-८०९५२, ९४४४२-९०९५३, ९४४४०-२१६७२. Email.: setu.dhamma@gmail.com संपर्कः श्री गोयन्का, नं. २, सीदम्मल रोड, अलवरपेट, चेन्नई-६०००१८. फोनः (०४४) ४३४०-५०००, ४३४०-५००१, फैक्सः ९१-४४-४२०१-११७७. मोबाइलः ०९८४०७-५५५५५. Email: skgoenka@kgiclothing.in; skgoenka@gogogarments.in, शिविर संबंधीत जानकारी तथा पंजीकरण के लिए संपर्कः ९४४४४६२५८३, ९४४२२-८७५९२, ९०४२६-३२८८९, ८०१५७-५६३३९, ९९४०४-६७६५३. (केवल कार्यालय के समय अर्थात सुबह १० बजे से १ तथा सायं २ से ५ बजे तक).

धम्मपफुल्लः बेंगलोर विपश्यना केंद्र, अलूर-५६२१२३. (गाँव अलूर, अलूर पंचायत कार्यालय के पास) तुमकूर हाईवे के सामने दासनपुरा बेंगलोर उत्तर तालुका, (कर्नाटक). फोनः (०८०) २३७१-२३७७, २३७१७१०६, ९१-९७३१९५९१५८० (सुबह १० से सायं ६ तक), ९२४२३-५७४२४ (सुबह ९ से दोपहर २ तथा सायं ४ से ६ तक), एवं ९३४३५-४५३८८ (सुबह ११ से दोपहर ३ तक) Email: info@paphulla.dhamma.org [बेंगलोर रेलवे स्टेशन से २३ की.मी. दूर. मजेस्टिक बस स्टैंड के प्लेटफार्म २० से नं. २५६, २५८, २५८सी, २५८ के बस से तुमकूर हाईवे पर हिमालया ड्रग भवन तक, तथा वहां से अलूर गांव के लिए ऑटोरिक्शा मिलते हैं।]

धम्मनागज्जुन : विपश्यना साधना केंद्र, हिल कॉलोनी, नागार्जुन सागर, जि. नालगोंडा, आंध्र प्रदेश, (हैदराबाद से १४०.४ किमी, बुद्धपार्क के पास, हिल कॉलोनी से हैदराबाद की तरफ ३ किमी. दूरी पर) पिन-५०८२०२. फोनः (८६८०) २७७९९९ मोबाः ०९९६३७७५६४५, ९४४०१- ३९३२९. Email: info@nagajjuna.dhamma.org

धम्मनिज्झान : विपश्यना साधना केंद्र, इदूर, पो. पांडागाम-५०३१८६, येदपल्ली मंडल, जि. निजामाबाद, फोनः (०८४६७) ३१६६६३, ९९०८५९६३३६. Email: info@nijjhana.dhamma.org

धम्मविजय : विपश्यना साधना केंद्र, विजयराय, पोस्ट- पेदावेगी मंडलम, पिन-५३४४५०, जि. पश्चिम गोदावरी, (आंध्र प्रदेश). [विजयराय गांव एलुरु से १५ किमी, एलुरु चिंतलपुडी रोड पर, विजयराय बस स्टेन्ड से ३ की. मी. दूरी पर धम्मविजया सेंटर है, बस स्टेन्ड से ऑटो/टैक्सी उपलब्ध है।] फोनः (०८८१२) २२५५२२; मोबा. ९४४१४-४९०४४

धम्मारामः विपश्यना अंतर्राष्ट्रीय साधना केंद्र, कुमुदवल्ली गाव, भीमावरम भानुडु रोड, (भीमावरम के पास), मंडल -पाल कोडेरु, जि. पश्चिम गोदावरी, पिन ५३४२१०. फोनः ०८८१६- २३६५६६. Email: info@rama.dhamma.org

धम्म कोण्डञ्ञ : विपश्यना साधना केंद्र, कोंडापुर (ग्राम) संगारेड्डी, जि. मेडक - ५०२३०६, संपर्कः मोबा. ९३९१०-९३५९९, ९३९८३-१६१५५.

धम्मकेतन: विपश्यना साधना केंद्र, पो. मम्पग (व्हाया) कोडुकुलान्जी, चेन्गन्नूर, जि. अल्पुझा, केरल-६८९५०८. फोन:
(०४७९) २३५-१६१६. Email: info@ketana.dhamma.org संपर्कः १) (कार्यालय) केरल विपश्यना
समिती, मायथ्री, नेरेयथरा लाइन, पेरनडार रोड, एलमकरा पो. ऑ. कोची-६८२ ०२६. केरल फोन: (०४८४)
२५३९८९१ २) श्री वी. रविंद्रन, मोबा. ९८४६५-६९८९१.

धम्म मधुराः मदुराई (धर्म की मधुरता) मदुराई

धम्मकानन : धम्मकानन विपश्यना केंद्र, वैनगंगा तट, रैगाटोला, पो. गर्रा, बालाघाट. फोन: (०७६३२) २९२४६५;
संपर्कः १) श्री हरीदास मेश्राम, १२६, रतन कुटी, गंगानगर रोड, बुढ़ी, बालाघाट-४८१००१, (म. प्र.) फोन: (०७६३२)
२३९१६५, मोबाईल: ०९४२५१४००१५, Email: dineshbgt@hotmail.com २) श्री रांझानंद, मोबा.
०९४२४६-१४७३४.

धम्मकेतु : विपश्यना केंद्र, पोस्ट बॉक्स १६, थनौद, व्हाया-अंजोरा, जिला-दुर्ग, छत्तीसगढ़-४९१००१; (म.प्र.) फोन:
(०७८८) ३२०५५१३, मोबा. ९५८९८४२७३७. Email: info@ketu.dhamma.org संपर्कः १) धम्मकेतु,
(उपरोक्त केंद्र के पते पर) तथा मोबा. ०९४२५२-३४५४७, ०९०९८९-२०२४६.

धम्मबल : विपश्यना साधना केंद्र, भेड़ाघाट थाने से एक किलोमीटर, बायपास मार्ग, भेड़ाघाट, जबलपुर, मोबा.
९३००५०६२५३. संपर्कः विपश्यना ट्रस्ट, जबलपुर द्वारा - मधु मेडिकल स्टोर्स, मेडिसिन काम्प्लेक्स, शास्त्रीब्रिज के
पास, मॉडल रोड, बैंक ऑफ बड़ौदा के बाजू में, जबलपुर-०२ फोन: ०७६१-४००६२५२, मोबा. ९९८१५-९८३५२,
९४२४३-५५२१४.

धम्मलिच्छवी : वैशाली विपश्यना केंद्र, लदौरा ग्राम, लदौरा पाकी, मुजफ्फरपुर-८४३११३ फोन: ०९९३११६१२९०. संपर्कः
श्री गोयन्का, जेनीथ आटो सर्विस, अघोरिया बाजार, पो. रामना, मुजफ्फरपुर, पिन-८४२००२. फोन: ०६२१-
२२४०-२१५, २२४७७६०. Email: info@licchavi.dhamma.org

धम्मबोधि: बोधगया अंतर्राष्ट्रीय विपश्यना साधना केंद्र, मगध विश्वविद्यालय के समीप, पो. मगध विश्वविद्यालय, गया डोभी
रोड, बोधगया-८२४२३४, मोबा. ९४७१६-०३५३१. Email: info@bodhi.dhamma.org संपर्कः फोन:
(०६३१) २२००४३७, ९९५५९-११५५६.

धम्मपुब्बोत्तर : मिजोरम विपश्यना साधना केंद्र, कमलानगर-२, सीलडीसी, चांगते सी, जि. लॉगतलाई, मिजोरम-७९६७७२.
Email: mvmc.knagar@gmail.com, संपर्कः १) दिगंबर चकमा, फोन: ०३७२-२५६३६८३. मोबा.
०९४३६७-६३७०८.

धम्मपुरी: त्रिपुरा विपश्यना मेडिटेशन सेंटर, पो. मचमरा, जि. उत्तर त्रिपुरा, पिन: ७९९२६५. मोबा. ०९८६२६-४६७६४,
Email: Info@Puri.dhamma.org संपर्कः श्री देवान मोहन, फोन: ०३८१-२३००४४१. मोबा.
०९८६२१-५४८८२, ०९४०२५-२७१९१.

धम्मगंगा: विपश्यना केंद्र, सोदपुर, हरिश्चन्द्र दत्ता रोड, पनिहटी, बारो मन्दिर घाट, कोलकाता-७००११४. फोन: (०३३)
२५५३२८५५. Email: info@ganga.dhamma.org संपर्कः कार्यालयः श्री कार्तिकदा, २२, बानफील्ड लेन,
दूसरा मंजला, कोलकाता-७००००१. फोन. (०३३) २२४२३२२५/४५६१ (२) श्री सांदी, १२३A, मोतीलाल नेहरू रोड,
कोलकाता-२९ फोन नि. २४८५४१७९. मोबा. ९८३१४-४७७०१.

धम्मबंग: कोलकाता, पश्चिम बंगाल संपर्कः धम्मगंगा केंद्र.

धम्मपाल : धम्मपाल विपश्यना केंद्र, कलवा डैम के पीछे, ग्राम दौलतपुर, भोपाल-४६२ ०४४, संपर्कः मोबा.
९४०६९-२७८०३. संपर्कः प्रकाश गेडाम, ई-३/८, नुपुर कुंज, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-४६२०१६. मोबा.
९८९३२-८९०६९., फोन: (०७५५) २४६८०५३, २४६२३५१, फैक्स: २४६-८११७. Email:
dhammapal@airtelmail.in; ऑन लाइन आवेदन:
http://www.dhamma.org/en/schedules/schpala.shtml

धम्ममालवा : इंदौर (म.प्र.) विपश्यना केंद्र, ग्राम - जंबूडी हप्सी, गोम्मटगिरी के आगे, पितृ पर्वत के सामने, हातोद रोड,
इंदौर-४५२००३, संपर्कः १) इंदौर विपश्यना इंटरनेशनल फाउंडेशन, ट्रस्ट, "आभगंगा" ५८२, एम. जी. रोड इंदौर
(म.प्र.) फोन: (०७३१) ४२७३३१३. Email: info@malava.dhamma.org;
dhammamalava@gmail.com २) श्री शंभुदयाल शर्मा, मोबा. ९८९३१-२९८८८.

धम्मरत : (रतलाम से १५ कि.मी.) साई मंदिर के पीछे, ग्राम धमनोद ता. साईलन जि. रतलाम ४५७००१, फैक्स: ०७४१२
४०३८८२, मोबा. ०९८२३५-३५२५७. Email: dhamm.rata@gmail.com संपर्कः रतलाम विपश्यना
समिति, द्वारा डा. वाधवानी क्लीनीक, ११७, स्टेशन रोड, रतलाम-४५७००१ मोबा. ०९९८१०-८४८२२,
९४२५३-६४९५६.

धम्मउपवन: बागर्दाकृया, बिहार संपर्कः फोन: निवास (०६२२) २४४ ९३५, ५५२१ ०७७०

धम्मउत्कल: विपश्यना साधना केंद्र, ग्राम बानवेरा पो. अमसेना, (व्हाया) खरियार रोड जिला: नुआपाडा, उड़ीसा-७६६१०६.
मोबा. ०९४०६२२३८९६, संपर्कः १) श्री. एस. एन. अग्रवाल, मोबा. ०९४३८६१०००७, २) श्री. पुरुषोत्तम जे.
मोबा. ०९४३७०-७०५०५.

धम्मसिक्किम: विपश्यना साधना केंद्र, पो. ऑ. आयो सेन्नी, ग्राम, सेन्नी ईस्ट सिक्किम- ७३७१३५. संपर्कः ग्रीनहेवी
धौगिया, मोबा. ०९८३०७-०६४८१, ०९७४८४-६१७८७, ०९४२४३-३९३०३, ०९४३४८-६२२२६. Email:
basantigorsia@hotmail.com

धम्मशृंग: नेपाल विपश्यना केंद्र, मुहान पोखरी, बुढ़ानीलकंठ, पो. बा. १२८९६, काठमांडू, फोन: ९७७ (०१) ४३७१६५५,
४३७१००७, ४२५०५८१. ४२२५४९०; निवासः ४२२४५२०, ४२२६३१४. Email:
info@sringa.dhamma.org; संपर्कः फोन: २५०५८१, २२५४९०, नि.२२१२९०. फैक्स: २२४७२०,
२२६३१४.

धम्मजननी: लुंबिनी विपश्यना केंद्र, लुंबिनी (पोल फोम के पास), रूपन्देही, लुंबिनी अंचल, नेपाल. फोन: ९७७ (७१) ५८१५४९.
info@janani.dhamma.org फोन: ९७७ (७१) ५८०२८२. संपर्कः नेपाल. फोन: [९७७]

धम्मबिराट : पूर्वांचल विपश्यना केंद्र, कुलवरी टोल, बस पार्क के दक्षिण की ओर इथारी- ७ सनसरी, नेपाल; फोन: [९७७] (२१)
(२५) ५८५५२१; Email: info@birata.dhamma.org; संपर्कः १) श्री मुंद्रा, फोन: दुकान [९७७](२५)५२३५२८, नि. ५२५८२९
५२३५८३, ५२४५८६, फैक्स: ५२६४६६; २) श्री गोयल, फोन: दुकान

धम्मतराई : वीरगंज विपश्यना केंद्र, परवानीपुर, पारसा, नेपाल. Email: info@tarai.dhamma.org संपर्क: १) कार्यालय: संदीप बिल्डिंग, आदर्श नगर, पो. बा. नं. ३२, फोन: ०५१-५२१८८४, फैक्स: ०५१-५८०४६५, मोबा. ९८०४२-४५३६

धम्मचितवन : चितवन विपश्यना केंद्र, मंगलपुर भी.डी.सी. वार्ड नं ८, विजयनगर बाजार के समीप, चितवन, नेपाल Email: info@citavana.dhamma.org संपर्क: १) श्री महाराजन, फोन: ९७७(५६) ५२०२९४, ५२८२९४

धम्मकीर्ति : कीर्तिपुर विपश्यना केंद्र, देवढोका, कीर्तिपुर, नेपाल. संपर्क: श्री महर्जन, समाज लोंचे, वार्ड नं. ६, कीर्तिपुर.

धम्मपोखरा : पोखरा विपश्यना केंद्र, पर्वभिया लेखनाथ नगरपालिका, पोखरा, कास्की, नेपाल. संपर्क: श्री नाग गुरुंग फोन: [९७७] (०६१) ६९११७२, मोबा. ९८४६२-३२३८३, ९८४१२-५५६८८. Email: info@pokhara.dhamma.org

Cambodia

Dhamma Laṭṭhikā: Battambang Vipassana Centre, Trungmorn Mountain, National Route 10, District Phnom Sampeau, Battambang, Cambodia **Contact:** Phnom-Penh office: Mrs. Nary POC, Street 350, #35, Beng Keng Kang III, Khan Chamkar Morn, Phnom-Penh, Cambodia. P.O. Box 1014 Phnom-Penh, Cambodia Tel. [855] (012) 689 732; poc_nary@hotmail.com; **Local contact:** Off: Tel: [855] (536) 488 588, 2. Mr. Sochet Kuoch, Tel: [855] (092) 931 647, [855] (012) 995 269 Email: mientan2000@yahoo.co.uk and ms_apsara@yahoo.com

Hong Kong

Dhamma Muttā: G.P.O. Box 5185, Hong Kong Tel: 852-2671 7031; Fax: 852-8147 3312, Email: info@hk.dhamma.org

Indonesia

Dhamma Jāvā: Jl. H. Achmad No.99; Kampung Bojong, Gunung Geulis, Kecamatan Sukaraja, Cisarua-Bogor, Indonesia. Tel: [62] (0251) 827-1008; Fax: [62] (021) 581-6663; Website: www.java.dhamma.org, Course Registration Office Address: IVMF (Indonesia Vipassana Meditation Foundation), Jl. Tanjung Duren Barat I, No. 27 A, Lt. 4, Jakarta Barat, Indonesia Tel : [62] (021) 7066 3290 (7am to 10pm); Fax: [62] (021) 4585 7618; Email: info@java.dhamma.org

Iran

Dhamma Iran: Teheran Dhamma House Tehran Mehrshahr, Eram Bolvar, 219 Road, No. 158 Tel: 98-261-34026 97; website: www.iran.dhamma.org; Email: info@iran.dhamma.org

Israel

Dhamma Pamoda: Kibbutz Deganya-B, Jordan Valley, Israel **City contact:** Israel Vipassana Trust, P.O. Box 75, Ramat-Gan 52100, Israel, Website: www.il.dhamma.org/os/Vipassana-centre-eng.asp; Email: info@il.dhamma.org

Korea

Dhamma Korea: Tel: +82-010-8912-3566, +82-010-3044-8396 Website: www.kr.dhamma.org; Email: dhammakor@gmail.com

Japan

Dhamma Bhānu: 2-1 Iwakamioku, Hatta, Kyotamba-cho, Funai-gun, Kyoto 622-0324 Tel/Fax: [81] (0771) 86 0765, Website: www.bhanu.dhamma.org; Email: info@bhanu.dhamma.org

Dhammādicca: 785-3 Kaminogo, Mutsuzawa-machi, Chosei-gun, Chiba, 299-4413 Tel/Fax: [81](475)403611 Website: www.adicca.dhamma.org; Email: info@adicca.dhamma.org

Malaysia

Dhamma Malaya: Malaysia Vipassana Centre, **Centre Address:** Gambang Plantation, opp. Univ. M.P. Lebuhraya MEC, Gambang, Pahang, Malaysia Office Address: No., 30B, Jalan SM12, Taman Sri Manja, 46000 Petaling Jaya, Malaysia. Tel: [60] (16) 341 4776 (English Enquiry) Tel: [60] (12) 339 0089 (Mandarin Enquiry) Fax: [60] (3) 7785 1218; Website: www.malaya.dhamma.org; Email: info@malaya.dhamma.org

Mongolia

Dhamma Mahāna: Vipassana center trust of Mongolia. Eronkhy said Amaryn Gudamj, Soyolyn Tov Orgoo, 9th floor, Suite 909, Mongolia Tel: [976] 9191 5892, 9909 9374; **Contact:** Central Post Office, P. O. Box 2146 Ulaanbaatar 211213, Mongolia, Email: info@mahana.dhamma.org

Myanmar

Dhamma Joti: Vipassana Centre, Wingaba Yele Kyaung, Nga Htat Gyi Pagoda Road, Bahan, Yangon, Myanmar Tel: [95] (1) 549 290, 546660; Office: No. 77, Shwe Bon Tha Street, Yangon, Myanmar. Fax: [95] (1) 248 174 **Contact:** Mr. Banwari Goenka, Goenka Geha, 77 Shwe Bon Tha Street, Yangon, Myanmar Tel: [95] (1) 241 708, 253 601, 245 327, 245 201; Res. [95] (1) 556 920, 555 078, 554 459; Tel/Fax: Res. [95] (01) 556 920; Off. 248 174; Mobile: 95950-13929; Email: bandoola@mptmail.net.mm; goenka@ mptmail.net.mm; Email: dhammajoti@mptmail.net.mm

Dhamma Ratana: Oak Pho Monastery, Myoma Quarter, Mogok, Myanmar **Contact:** Dr. Myo Aung, Shansu Quarter, Mogok. Mobile: [95] (09) 6970 840, 9031 861;

Dhamma Maṇḍapa: Bhamo Monastery, Bawdigone, Near Mandalay Arts & Science University, 39th Street, Mahar Aung Mye Tsp., Mandalay, Myanmar Tel: [95] (02) 39694,
Email: info@mandala.dhamma.org

Dhamma Maṇḍala: Yetagun Taung, Mandalay, Myanmar. Tel: [95] (02) 57655, **Contact:** Dr Mya Maung, House No 33 , 25th Street, (Between 81 and 82nd Street), Mandalay, Myanmar Tel: [95] (02) 57655; Email: info@mandala.dhamma.org

Dhamma Makuṭa: Mindadar Quarter, Mogok.Mandalay Division, Myanmar. Tel: [95] (09) 80-31861; Email: info@joti.dhamma.org

Dhamma Manorama: Main road to Maubin University, Maubin, Myanmar. Tel: **Contact:** U Hla Myint Tin, Headmaster, State High School, Maubin, Myanmar. Tel: [95] (045) 30470

Dhamma Mahimā: Yechan Oo Village, Mandalay-Lashio Road, Pyin Oo Lwin, Mandalay Division, Myanmar. Tel: [95] (085) 21501; Email: info@mandala.dhamma.org

Dhamma Manohara: Aung Tha Ya Qr, Thanbyu-Za Yet, Mon State **Contact:** Daw Khin Kyu Kyu Khine, No.64 Aungsan Road, Set-Thit Qr, Thanbyu-Zayet, Mon State, Myanmar. Tel: [95] (057) 25607

Dhamma Nidhi: Plot No. N71-72, Off Yangon-Pyay Road, Pyinma Ngu Sakyet Kwin, In Dagaw Village, Bago District, Myanmar. **Contact:** Moe Mya Mya (Micky), 262-264, Pyay Road, Dagon Centre, Block A, 3rd Floor, Sanchaung Township, Yangon11111, Myanmar. Tel: 95-1-503873, 503516–9. Email: dagon@mptmail.net.mm

Dhamma Ñāṇadhaja: Shwe Taung Oo Hill, Yin Ma Bin Township, Monywa District, Sagaing Division, Myanmar **Contact:** Dhamma Joti Vipassana Centre

Dhamma Lābha: Lasho, Myanmar

Dhamma Magga: Near Yangon, Off Yangon Pegu Highway, Myanmar

Dhamma Mahāpabbata: Taunggyi, Shan State, Myanmar

Dhamma Cetiya Paṭṭhāra: Kaytho, Myanmar

Dhamma Myuradipa: Irrawadi Division, Myanmar

Dhamma Pabbata: Muse, Myanmar

Dhamma Hita Sukha Geha: Insein Central Jail, Yangon, Myanmar

Dhamma Hita Sukha Geha-2: Central Jail Tharawaddy, Myanmar

Dhamma Rakkhita: Thayawaddi Prison, Bago, Myanmar

Dhamma Vimutti: Mandalay, Myanmar

Dhamma Mitta Yāna:

Philippines

Dhamma Phala: Philippines, Email: info@ph.dhamma.org

Sri Lanka

Dhamma Kūṭa: Vipassana Meditation Centre, Mowbray, Hindagala, Peradeniya, Sri Lanka Tel/Fax: [94] (081) 238 5774; Tel: [94] (060) 280 0057; Email: dhamma@sltnet.lk Website: www.lanka.com/dhamma/dhammakuta;

Dhamma Sobhā: Vipassana Meditation Centre, Balika Vidyala Road, Pahala Kosgama, Kosgama, Sri Lanka Tel: [94] (36) 225 3955 Email: dhammasobhavms@gmail.com

Dhamma Anurādha: Ichchankulama Wewa Road, Kalattewa, Kurundankulama, Anuradhapura, Sri Lanka. Tel: [94] (25) 222-6959; Contact: Mr. D.H. Henry, Opposite School, Wannithammannawa, Anuradhapura, Sri Lanka. Tel: [94] (25) 222-1887; Mobile. [94] (71) 418-2094. Website: www.anuradha.dhamma.org; Email: info@anuradha.dhamma.org

Taiwan

Dhammodaya: No. 35, Lane 280, C hung-Ho Street, Section 2, Ta-Nan, Hsin She, Taichung 426, P. O Box No. 21, Taiwan Tel: [886] (4) 581 4265, 582 3932; Website: www.udaya.dhamma.org; Email: dhammodaya@gmail.com

Dhamma Vikāsa: Taiwan Vipassana Centre - Dhamma Vikasa, No. 1-1, Lane 100, Dingnong Road, Laonong Village Liouguei Township, Kaohsiung County Taiwan, Republic of China, Tel: [886] 7-688 1878; Fax: [886] 7-688 1879; Email: info@vikasa.dhamma.org

Thailand

Dhamma Kamala: Thailand Vipassana Centre, 200 Yoo Pha Suk Road, Ban Nuen Pha Suk, Tambon Dong Khi Lek, Muang District, Prachinburi Province, 25000, Thailand Tel. [66] (037) 403- 514-6, [66] (037) 403 185; Website: http://www.kamala.dhamma.org/, Email: info@kamala.dhamma.org

Dhamma Ābhā: 138 Ban Huay Plu, Tambon Kaengsobha, Wangton District, Pitsanulok Province, 65220, Thailand Tel : [66] (81) 605-5576, [66] (86) 928-6077; Fax : [66] (55) 268 049; Website: http://www.abha.dhamma.org/, Email: info@abha.dhamma.org

Dhamma Suvaṇṇa: 112 Moo 1, Tambon Kong, Nongrua District, Khonkaen Province, 40240, Thailand Tel [66] (08) 9186-4499, [66] (08) 6233-4256; Fax [66] (043) 242-288; Website: http://www.suvanna.dhamma.org/, Email: info@suvanna.dhamma.org

Dhamma Kañcana: Mooban Wang Kayai, Tambon Prangpley, Sangklaburi District, Kanchanaburi Province, Thailand Tel. [66] (08) 5046-3111 Fax [66](02) 993-2700, Email: info@kancana.dhamma.org

Dhamma Dhānī: 42/660 KC Garden Home Housing Estate, Nimit Mai Road, East Samwa Sub-district, Klongsamwa District, Bangkok 10510, Thailand Tel. [66] (02) 993-2711 Fax [66] (02) 993-2700; Email: info@dhani.dhamma.org

Dhamma Sīmanta: Chiengmai, Thailand Contact: Mr. Vitcha Klinpratoom, 67/86, Paholyotin 69, Anusaowaree, Bangkhen, BKK 10220 Thailand Tel: [66] (81) 645 7896; Fax: [66] (2) 279 2968; Email: vitchcha@yahoo.com; Email: info@simanta.dhamma.org

Dhamma Porāṇo: A meditator has donated six acres of land near Nakorn Sri Dhammaraj (the name of the city), an important and ancient sea-port.

Dhamma Puneti: Udon Province, Thailand

Dhamma Canda Pabhā: Chantaburi, an eastern town about 245 kilometres from Bangkok

Australia & New Zealand

Dhamma Bhūmi: Vipassana Centre, P. O. Box 103, Blackheath, NSW 2785, Australia Tel: [61] (02) 4787 7436; Fax: [61] (02) 4787 7221, Website: www.bhumi.dhamma.org; Email: info@bhumi.dhamma.org

Dhamma Rasmi: Vipassana Centre Queensland, P. O. Box 119, Rules Road, Pomona, Qld 4568, Australia Tel: [61] (07) 5485 2452; Fax: [61] (07) 5485 2907, Website: www.rasmi.dhamma.org; Email: info@rasmi.dhamma.org

Dhamma Pabhā: Vipassana Centre Tasmania, GPO Box 6, Hobart, Tasmania 7001, Australia Tel: [61] (03) 6263 6785; Website: www.pabha.dhamma.org, Course registration & information: [61] (03) 6228-6535 or [61](03) 6263-6785, Email: info@pabha.dhamma.org

Dhamma Āloka: P. O. Box 11, Woori Yallock, VIC 3139, Australia Tel: [61] (03) 5961 5722; Fax: [61] (03) 5961 5765 Website: www.aloka.dhamma.org, Email: info@aloka.dhamma.org

Dhamma Ujjala: Mail to: PO Box 10292, BC Gouger Street, Adelaide SA 5000, [Lot 52, Emu Flat Road, Clare SA 5453, Australia] Tel contact: Anne Blizzard [61] (0)8 8278 8278; Email: info@ujjala.dhamma.org

Dhamma Padipa: Vipassana Foundation of WA, Australia, Website: www.dhamma.org.au, Contact: Andrew Parry C/- 13 Goldsmith Road, Claremont, WA 6010, Australia. Tel: [61]-(8)-9388 9151. Email: andparry@optusnet.com.au; Email: info@padipa.dhamma.org

Dhamma Medini: 153 Burnside Road, RD3 Kaukapakapa, Rodney District, New Zealand Tel: [64] (09) 420 5319; Fax: [64] (09) 420 5320; Website: www.medini.dhamma.org; Email: info@medini.dhamma.org

Dhamma Passaddhi: Northern Rivers region, New South Wales, Email: info@passaddhi.dhamma.org

Europe

Dhamma Dipa: PENCOYD, ST. OWENS CROSS, HR2 8NG, UK Tel: [44] (01989) 730 234; Fax: [44] (01989) 730 450; Website: www.dipa.dhamma.org; Email: info@dipa.dhamma.org

Dhamma Padhāna: European Long-Course Centre, Pencoyd, ST Owens Cross, HR2 8NG, UK; Website: www.eu.region.dhamma.org/os username <oldstudent> password <behappy> Email: info@padhana.dhamma.org

Dhamma Dvāra: Vipassana Zentrum, Alte Strasse 6, 08606 Triebel, Germany Tel: [49] (37434) 79770; Fax: [49] (37434) 79771 Website: www.dvara.dhamma.org; Email: info@dvara.dhamma.org

Dhamma Mahī: France Vipassana Centre, Le Bois Planté, Louesme, F-89350 Champignelles, France. Tel: [33] (0386) 457 514; Fax [33] (0386) 457 620; Website: www.mahi.dhamma.org; Email: info@mahi.dhamma.org

Dhamma Nilaya: 6, Chemin de la Moinerie, 77120, Saints, France Tel/Fax: [33] 1 6475 1370; Mobile: 0609899079; Email: vejuly2001@orange.fr

Dhamma Aṭala: Vipassana Centre, SP29, Lutirano 15 50034 Lutirano (Fi) Italy Tel: Off. [39] (055) 804 818; Website: www.atala.dhamma.org; Email: info@atala.dhamma.org

Dhamma Sumeru: Centre Vipassana, No. 140, Ch-2610 Mont-Soleil, Switzerland Tel: [41] (32) 941 1670; Website: www.sumeru.dhamma.org; Email: info@sumeru.dhamma.org; Registration office: registration@sumeru.dhamma.org

Dhamma Neru: Centro de Meditación Vipassana, Cami Cam Ram, Els Bruguers, A.C.29, Santa Maria de Palautordera, 08460 Barcelona, Spain Tel: [34] (93) 848 2695; Website: www.neru.dhamma.org; Email: info@neru.dhamma.org

Dhamma Pajjota: Dhamma Pajjota, Belgium, Light (or Torch) of Dhamma, Vipassana Centrum, Driepaal 3, 3650 Dilsen-Stokkem, Belgium. Tel: [32] (0) 89 518 230; Website: www.pajjota.dhamma.org; Email: info@pajjota.dhamma.org

Dhamma Sobhana: Lyckebygården, S-599 93 Ödeshög, Sweden. Tel: [46] (143) 211 36; Website: www.sobhana.dhamma.org; Email: info@sobhana.dhamma.org

Dhamma Pallava: Vipassana Poland, Contact: Malgorzata Myc 02-798 Warszawa, Ekologiczna 8 m.79, Poland, Tel: [48](22) 408 22 48; Mobile: [48] 505-830-915, Email: info@pl.dhamma.org

Dhamma Sukhakari: East Anglia (UK)

North America

Dhamma Dharā: VMC, 386 Colrain-Shelburne Road, Shelburne MA 01370-9672, USA Tel: [1] (413) 625 2160; Fax: [1] (413) 625 2170; Website: www.dhara.dhamma.org; Email: info@dhara.dhamma.org

Dhamma Kuñja: Northwest Vipassana Center, 445 Gore Road, Onalaska, WA 98570, USA Tel/Fax: [1] (360) 978 5434, Reg Fax: [1] (360) 242-5988; Website: www.kunja.dhamma.org; Email: info@kunja.dhamma.org

Dhamma Mahāvana: California Vipassana Center, 58503 Road 225, North Fork, California, 93643 Mailing address: P. O. Box 1167, North Fork, CA 93643, USA Tel: [1] (559) 877 4386; Fax [1] (559) 877 4387; Website: www.mahavana.dhamma.org; Email: info@mahavana.dhamma.org

Dhamma Siri: Southwest Vipassana Center, 10850 County Road 155 A Kaufman, TX 75142, USA Mailing address: P. O. Box 7659, Dallas, TX 75209, USA Tel: [1] (972) 962-8858; Fax: [1] (972) 346-8020 (registration); [1] (972) 932-7868 (center); Website: www.siri.dhamma.org; Email: info@siri.dhamma.org

Dhamma Surabhi: Vipassana Meditation Center, P. O. Box 699, Merritt, BC V1K 1B8, Canada Tel: [1] (250) 378 4506; Website: www.surabhi.dhamma.org; Email: info@surabhi.dhamma.org

Dhamma Maṇḍa: Northern California Vipassana Center, Mailing address: P. O. Box 265, Cobb, Ca 95426, USA Physical address: 10343 Highway 175, Kelseyville, CA 95451, USA Tel: [1] (707) 928-9981; Website: www.manda.dhamma.org; Email: info@manda.dhamma.org

Dhamma Suttama: Vipassana Meditation Centre, 810, Côte Azélie, Notre-Dame-de-Bonsecours, Montebello, (Québec), J0V 1L0, Canada Tél. 1-819-423-1411, Fax. 1- 819- 423- 1312, Website: www.suttama.dhamma.org; Email: info@suttama.dhamma.org

Dhamma Pakāsa: Illinois Vipassana Meditation Center, 10076 Fish Hatchery Road, Pecatonica, IL 61063, USA Tel: [1] (815) 489-0420; Fax [1] (360) 283-7068 Website: www.pakasa.dhamma.org; Email info@pakasa.dhamma.org

Dhamma Toraṇa : Ontario Vipassana Centre, 6486 Simcoe County Road 56, Egbert, Ontario, L0L 1N0 Canada Tel: [1] (705) 434 9850; Website: www.torana.dhamma.org; Email. info@torana.dhamma.org

Dhamma Vaddhana: Southern California Vipassana Center, P.O. Box 486, Joshua Tree, CA 92252, USA. Tel: [1] (760) 362-4615; Website: www.vaddhana.dhamma.org; Email: info@vaddhana.dhamma.org

Dhamma Patāpa: Southeast Vipassana Trust, Jessup, Georgia, South East USA Website: www.patapa.dhamma.org

Dhamma Modana: Canada Tel: [1] (250) 483-7522; Website: www.modana.dhamma.org; Email: info@modana.dhamma.org

Dhamma Karunā: Alberta Vipassana Foundation, Tel: [1](403) 283-1889; Fax: [1](403) 206-7453; Email: registration@ab.ca.dhamma.org

Latin America

Dhamma Santi: Centro de Meditação Vipassana, Miguel Pereira, Brazil Tel: [55] (24) 2468 1188. Website: www.santi.dhamma.org; Email: info@santi.dhamma.org

Dhamma Makaranda: Centro de Meditación Vipassana, Valle de Bravo, Mexico Tel: [52] (726) 1-032017. Registration and information: Vipassana Mexico, P. O. Box 202, 62520 Tepoztlan, Morelos Tel/Fax: [52] (739) 395-2677; Website: www.makaranda.dhamma.org; Email: info@makaranda.dhamma.org

Dhamma Pasanna: Melipilla, Chile, Email: info@pasanna.dhamma.org

Dhamma Sukhadā: Buenos Aires, Argentina, Contact: Vipassana Argentina, Tel: [54] (11) 6385-0261; Email: info@ar.dhamma.org

Dhamma Veṇuvana: Centro de Meditación Vipassana, 90 minutes from Caracas, Sector Los Naranjos de Tasajera, Cerca de La Victoria, Estado Aragua, Venezuela. (See map on the website) Tel: [58] (212) 414-5678 For information and registration: Calle La Iglesia con Av. Francisco Solano, Torre Centro Solano Plaza, Of. 7D, Sabana Grande, Caracas, Venezuela. Phone: [58](212) 716-5988, Fax: 762-7235 Website: www.venuvana.dhamma.org; Email: info@venuvana.dhamma.org

Dhamma Suriya: Centro de Meditación Vipassana, Cieneguilla, Lima, Perú Email: info@suriya.dhamma.org

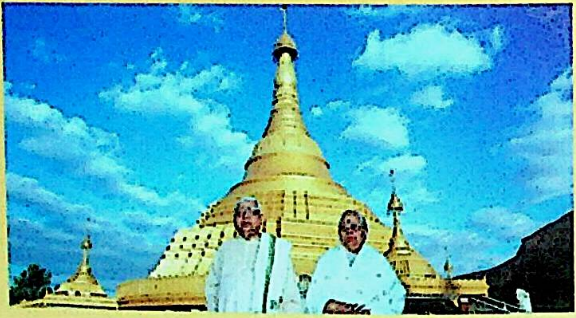
Dhamma Nandanvana: Colombia

South Africa

Dhamma Patākā: (Rustig) Brandwacht, Worcester, 6850, P. O. Box 1771, Worcester 6849, South Africa Tel: [27] (23) 347 5446; Contact: Ms. Shanti Mather, Tel/Fax: [27] (028) 423 3449; Website: www.pataka.dhamma.org; Email: info@pataka.dhamma.org

Russia

Dhamma Dullabha: Phones +7-968-894-23-92, +7-901-543-16-27



आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का एवं श्रीमती इलायचीदेवी गोयन्का

श्री गोयन्काजी ने म्यंमा के महान विपश्यनाचार्य सयाजी ऊ बा खिन से सर्वप्रथम सन १९५५ में 'विपश्यना' साधना सीखी। तब से अभ्यास का क्रम जारी रहा। सन १९६९ में भारत आये। व्यापार-धंधे से सर्वथा अवकाश ग्रहण कर भारत के विभिन्न स्थानों पर इस साधना-विधि के दस-दिवसीय शिविर लगाते रहे। सन १९७६ में प्रमुख विपश्यना केंद्र 'धम्मगिरि' की स्थापना के पश्चात अब तक पूरे विश्व में लगभग १६५ विपश्यना केंद्र स्थापित हो चुके हैं। अन्य नये-नये स्थानों पर भी केंद्र खुलते जा रहे हैं। इनमें साधकों के लिए नि:शुल्क आवास तथा भोजनादि की स्थायी व्यवस्था रहती है। विपश्यना सिखाने का सारा व्यय कृतज्ञ साधकों के दान पर निर्भर रहता है। शिविरों का संचालन पूज्य गोयन्काजी तथा उनके द्वारा नियुक्त विश्व-भर के १२०० से अधिक सहायक आचार्यों द्वारा किया जाता है। हिंदी, अंग्रेजी के अतिरिक्त विश्व की अन्य ५३ भाषाओं में श्री गोयन्काजी के प्रवचनों का अनुवाद हुआ है और उनके माध्यम से विश्वभर में शिविरों का संचालन हो रहा है। शिविर-काल में साधकों को बाह्य संपर्क से दूर, शिविर-स्थल पर ही रहना अनिवार्य होता है।

ध्यान की यह विद्या सीखने के लिए हर संप्रदाय के लोग आते हैं - नर हों या नारी। बाल, वृद्ध, युवा सभी उम्र के लोग आते हैं। बहुत ऊंची शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति आते हैं और एकदम निरक्षर, अनपढ़ लोग भी। धनाढ्य भी आते हैं और दरिद्रनारायण भी। सरकारी वा गैर-सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी तथा हर क्षेत्र के व्यवसायी एवं उद्योगपति आते हैं। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हर तबके के लोग आते हैं। किसी भी विपश्यना शिविर में समाज के हर वर्ग का यह अनूठा संगम बहुत विस्मयजनक होता है। इतनी विविधताओं के होते हुए भी सभी लोग इस विद्या से लाभान्वित होते हैं।

ISBN 978-81-7414-227-4

VRI - H20